प्रश्नोत्तर वाहिनी

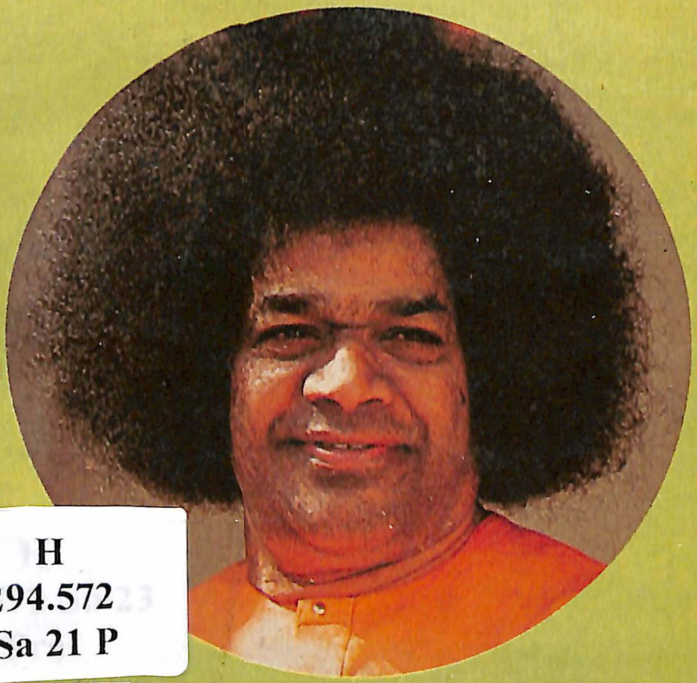

H
294.572
Sa 21 P

H
294.572
Sa 21 PR

प्रश्नोत्तर वाहिनी

भगवान श्री सत्य साई बाबा
द्वारा दिये गये
एक भक्त के सरल जिज्ञासपूर्ण
प्रश्नों के उत्तर

अंग्रेजी में सम्पादनकर्त्ता :
श्री एन० कस्तूरी
एम० ए०, बी० एल०

Published under arrangements with and authority of
Sri Sathya Sai Books & Publications Trust Prashanti Nilayam
Distt Anantapur AP 515134

अनुवादक :
पं० यमुना प्रसाद कात्यायन
एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत)

Library IIAS, Shimla
H 294.572 Sa 21 P

97926

मुद्रक : कंवल किशोर एण्ड कम्पनी नई दिल्ली–110005

प्रश्नोत्तर - वाहिनी

आज बुद्धि-वादी मानव में तर्क शक्ति प्रबल है, वह तर्क के सहारे, केवल तर्क का आश्रय लेकर ही निष्कर्ष निकालने का प्रयासी है। शारीरिक और मानसिक अभ्यासों की अविरल तथा कठोर प्रक्रिया से वह गुजरना प्रसन्द नहीं करता। प्रायः यही देखा जाता है कि वह स्वाध्याय से पहले ही तर्क आरम्भ कर देता है--क्योंकि यही तो उसको अपने चारों ओर स्थित समाज में जन्म-जात सम्पदा के रूप में मिल रहा है। फिर भी--जिज्ञासा के भाव से, कुछ समझ लेने के विचार से किया जाने वाला तर्क, प्रश्न, सद्मार्ग की ओर ले जाने वाला है।

एक भक्त ने भवगान श्री सत्य साई बाबा से कुछ प्रश्न अपनी सरल जिज्ञासा के निवार्णार्थ किये थे और भगवान ने उनका उत्तर दिया था, अंग्रेजी भाषा की प्रश्नोत्तर वाहिनी का हिन्दी अनुवाद पं० यमुना प्रसाद, कात्यायन, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) ने किया है। अनुवादनक ने अपनी शैक्षिक योग्यता का पूर्ण उपयोग तो स्वाभावतः किया ही होगा परन्तु फिर भी दैवीवाणी को अभिव्यक्त कर पाना कठिन ही है और इसलिये आप विद्वान पाठकों के परामर्श के लिये हम तैयार रहेंगे।

हमें विश्वास है कि आपको इस प्रश्नोत्तरी में कुछ अपने लिये भी मिलेगा यह आपके ज्ञानवर्द्धन में सहायक होगी।

— सम्पादक

प्रथम खण्ड

प्रश्न १— यह शरीर पंच भूतों से निर्मित क्यों कहा जाता है ?

उत्तर १— क्योंकि यह पंचतत्वों से उद्‌भूत हुआ है।

प्रश्न २— वे पंचतत्व वस्तुतः क्या हैं ?

उत्तर २— आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी।

प्रश्न ३— इन पाँचों की क्रमिक उत्पत्ति कहां से होती है ?

उत्तर ३— अपने पूर्ववर्ती तत्व से ही दूसरे तत्व की उत्पत्ति हुई है।

प्रश्न ४— इन पाँचों तत्वों में से सर्वप्रथम का कारण क्या है और इस प्रकार इन पाँचों की उत्पत्ति कहां से हुई है ?

उत्तर ४— ब्रह्म-जो कि सदा अपरिणामी, नित्य, कूटस्थ और आधार भूत है अधिष्ठान स्वरूप है।

प्रश्न ५ — इन पंचतत्वों और इस शरीर का परस्पर क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर ५— ब्रह्म से यत्न और महद् की उत्पत्ति हुई। इन दोनों से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी का प्रादुर्भाव हुआ। मानव शरीर इन पांचों ही का समन्वित फल है।

प्रश्न ६— ये पांचों तत्व शरीर में किस रूप में रहते हैं ?

उत्तर ६— प्रत्येक तत्व का पंजीकरण हुआ तब वह शरीर रचना में प्रविष्ट हुआ।

प्रश्न ७— आकाश में पंजीकरण का क्या रूप है ?

उत्तर ७— ज्ञान, मन, बुद्धि, चित्, अहंकार ये पंचाकाश (आकाशपंचक) कहलाते हैं।

प्रश्न ८— शरीर में ये किस प्रकार व्यक्त होते हैं ?

उत्तर ८— इन्हें अन्तरात्मा कहा जाता है।

प्रश्न ९— वायु नामक दूसरे तत्व के पाँच रूप क्या हैं ?

उत्तर ९— समान, वयान, उदान, अपान, प्राण।

प्रश्न १०— शरीर में इन्हें क्या कहा जाता है ?

उत्तर १०— प्रंचप्राण।

प्रश्न ११— और अग्नि ?

उत्तर ११– श्रवण, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और प्राण अग्नि के पाँच कार्य हैं।
प्रश्न १२– इन्हें दूसरों से अलग करके कैसे जाना जाता है ?
उत्तर १२– ये ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं।
प्रश्न १३– पाँच जल पंचक कौन से हैं ?
उत्तर १३– शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध।
प्रश्न १४– क्या इसका भी विशेष नाम है ?
उत्तर १४– इन्हें पंचतन्मात्रा कहते हैं।
प्रश्न १५– पृथ्वी तत्व शरीर में किस प्रकार व्यक्त होता है ?
उत्तर १५– मुख, हस्त, पाद, वायु और प्रस्थ के रूप में।
प्रश्न १६– और इनके नाम क्या हैं ?
उत्तर १६– वे कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं।
प्रश्न १७– यद्यपि मानव शरीर की रचना इस प्रकार इन पाँच तत्वों से हुई है और यह एक इकाई है, यह विचार करते हुए भी वेदान्ती कहता है कि वे कई इकाइयाँ हैं। क्या यह सत्य है ?
उत्तर १७– ये अनेक नहीं हैं। केवल तीन हैं। कुछ लोग चार भी बताते हैं।
प्रश्न १८– उन तीनों को क्या कहा जाता है और उनके क्या-क्या नाम हैं ?
उत्तर १८– स्थूल देह, सूक्ष्म देह, कारण देह और चौथे को महाकारण देह कहा जाता है।
प्रश्न १९– स्थूल देह का वास्तविक तात्पर्य क्या है ?
उत्तर १९– स्थूल देह का तात्पर्य है पाँच तत्वों से पंजीकरण द्वारा निर्मित शरीर।
प्रश्न २०– सूक्ष्म शरीर क्या है ?
उत्तर २०– पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रायें, पाँच प्राण, मन और बुद्धि ये सत्रह मिलकर सूक्ष्म शरीर का निर्माण करते हैं।
प्रश्न २१– क्या सूक्ष्म देह का कोई और पर्याय है ?
उत्तर २१– क्यों नहीं। इसे तेजस् कहा जाता है।
प्रश्न २२– क्या किसी विशेष अवस्था से इसे सम्बन्धित बताया जाता है ?
उत्तर २२– हाँ।
प्रश्न २३– उसका क्या नाम है ?

उत्तर २३– स्वप्न अवस्था।

प्रश्न २४– क्या आपके कहने का तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म शरीर की कोई स्थिति नहीं है?

उत्तर २४– इसकी स्थिति, अवश्य है।

प्रश्न २५– उस स्थिति का नाम बताइये?

उत्तर २५– जागृति।

प्रश्न २६– कारण शरीर क्या है?

उत्तर २६– वहाँ चित् ज्ञाता और ज्ञात से समन्वित रहता है।

प्रश्न २७– इसे क्या कहा जाता है?

उत्तर २७– प्रज्ञा।

प्रश्न २८– और स्थिति क्या कहलाती है?

उत्तर २८– सुषुप्ति।

प्रश्न २९– महाकारण शरीर का तात्पर्य समझाइये?

उत्तर २९– शुद्ध चैतन्य, जो इन पंचभूतों के समन्वय से रहित नित्य साक्षी स्वयं प्रबुद्ध तत्व को ही महाकारण देह कहते हैं।

प्रश्न ३०– क्या औरों की भाँति इसका भी कोई विशेष नाम है?

उत्तर ३०– यह हिरण्यगर्भ कहलाता है।

प्रश्न ३१– और इसकी स्थिति क्या है?

उत्तर ३१– यह सब स्थितियों से परे सर्वोपरि चैतन्य-क्षर पुरुष कहलाता है।

प्रश्न ३२– जिन पांच भूतों से स्थूल देह का निर्माण हुआ है उनसे और किन विशेष तत्वों की उत्पत्ति होती है?

उत्तर ३२– पृथ्वी तत्व से अस्थि, त्वचा, माँस, शिरायें, लोम। जल से रक्त, मूत्र, थूक, कफ और मस्तिष्क। अग्नि से क्षुधा, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, मयत्री। वायु से क्रिया, संचरण, गति, लज्जा, भय।

प्रश्न ३३– इसी प्रकार आकाश तत्व का भी कोई परिणाम होना चाहिए?

उत्तर ३३– वासना, क्रोध, लोभ, दया और ईर्ष्या।

प्रश्न ३४– मनुष्य को अनेकों क्लेश होते हैं। उसके स्थूल देह के इन तत्वों के परिणामों का भी क्या कोई सम्बन्ध क्लेशों से होता है?

उत्तर ३४-- हाँ ! उसकी समस्त उत्तेजनाओं का कारण इन विकारों का समूह ही तो है। क्लेश भी अनेक नहीं हैं यद्यपि वे देखने में अनेक लगते हैं। वे केवल चार प्रकार के होते हैं जिन्हें व्यसन कहा जाता हैं।

प्रश्न ३५-- चार व्यसन क्या हैं जो कि निराशा और क्लेश के कारण है ?

उत्तर ३५-- शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और यौन व्यसनों के अतिरिक्त अन्य व्यसन भी हैं किन्तु वे मूलरूप से इन पर ही आधारित होते हैं।

प्रश्न ३६-- मनुष्य मदान्ध होकर चारों ओर घूमता है। वह अहंभाव क्या है ? जो उसे इस प्रकार उत्तेजित करता है ? अहं कितने प्रकार का होता है?

उत्तर ३६-- अहं भी चार प्रकार का होता है। जातिमद, सम्पत्तिमद, यौवनमद, विद्यामद। अन्य प्रकार भी हैं किन्तु वे इन्हीं के अन्तर्गत वर्गीकृत किये जा सकते है।

द्वितीय खण्ड

प्रश्न १-- अनुभवी महापुरुषों, शास्त्र के विद्वानों तथा अन्य ज्ञानी जनों को कहते सुना है कि सारे लोक शरीर में ही हैं कृपया समझाइये कि यह लोक क्या हैं और शरीर में कहाँ स्थित हैं ?

उत्तर १-- हाँ ! भूलोक पादों में, भुवःलोक जननेन्द्रिय में, स्वःलोक नाभि में, महःलोक हृदय में, जनःलोक कण्ठ में, तपःलोक भूमध्य में, सत्य लोक ललाट में स्थित है। ये सातों ऊर्ध्व लोक कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त अधःलोक भी होते हैं।

प्रश्न २-- अधः लोक कौन हैं और कहाँ स्थिति हैं ?

उत्तर २-- अतल लोक पगों के तलवों में, वितल लोक नखों पर, सुतल लोक एड़ियों में, तलातल लोक कूल्हों पर, रसातल लोक घुटनों में, महातल उरुओं में और पाताललोक गुदा में।

प्रश्न ३-- क्षमा कीजिये, मेरी जिज्ञासा यह है कि जब समस्त लोक पंच तत्वों से निर्मित इस शरीर में ही हैं तो सप्तसिन्धुओं का क्या हुआ, पुराणों

में सप्त सागरों का वर्णन है क्या वे भी शरीर अथवा मस्तिष्क में ही हैं ?

उत्तर ३-- जब यह शरीर ही समस्त लोकों का वास स्थल है तो सप्त सागरों का पृथक अस्तित्व किस प्रकार हो सकता है। वे भी शरीर में ही हैं। लवण सागर (मूत्र) इक्षुरससागर (स्वेद) सोम (सूर-मदिरा) सागर (इन्द्रिय चैतन्य) सर्पिष सागर (घृत) (वीर्य) दधिसागर (श्लेषमा) क्षीरसागर (लार) पयसागर (अश्रु)।

प्रश्न ४-- आपने कई प्रकार की अग्नि का वर्णन किया था। वे क्या हैं ? और नाम क्या हैं ?

उत्तर ४-- उन्हें पंचाग्नि कहा जाता है। उनके नाम हैं कालाग्नि, क्षुधाग्नि, शीताग्नि, कोपाग्नि, ज्ञानाग्नि।

प्रश्न ५-- ये पंचाग्नि कहां रहती हैं ?

उत्तर ५-- पैर में कालाग्नि, उदर में क्षुधाग्नि, नाभि में शीताग्नि, नेत्र में कोपाग्नि और हृदय में ज्ञानाग्नि।

प्रश्न ६-- इसके अतिरिक्त नाद के भी कई प्रकार हैं मैंने लोगों को ऐसा कहते सुना है।

उत्तर ६-- हाँ--होते हैं।

प्रश्न ७-- क्या वे भी शरीर में होते हैं ? वे कितने प्रकार के हैं और उनके नाम क्या हैं ?

उत्तर ७-- नाद दस प्रकार के होते हैं। और ये सब समष्टि शरीर में होते हैं। लालादिघोष, भेरीनाद, चनीनाद, मृदंगनाद, घण्टानाद, कालनाद, किंकिणीनाद, वेणुनाद, भ्रमरनाद और अन्तिम है प्रणवनाद। ये नाद भेद हैं।

प्रश्न ८-- यदि समस्त सृष्टि शरीर में ही है तो अण्डाण्ड पिण्डाण्ड और ब्रह्माण्ड क्या हैं ?

उत्तर ८-- अन्डाण्ड का तात्पर्य यह है समस्त स्थावर-जंगम दृश्यमान प्रकृति जिसका विकास और लय होता रहता है। समस्त द्वैतर्क अंतःसिद्धान्त, दृष्टा और दृश्य, कर्त्ता और कार्य आदि को पिण्डाण्ड कहा जाता है।

द्वैतही कर्मानुसार जन्म और मरण का कारण है। महाभूतों की समष्टि पंचतत्वों की अन्तःशक्ति, के समूह का नाम ब्रह्माण्ड है। आत्मा आकाश तत्व से सम्बन्धित, जीवात्मा वायु तत्व से, पत्यगात्मा अग्नि से उद्भूत है, चैतन्य ब्रह्म जल तत्व से सम्बन्धित है और परमात्मा धरणी तत्व से। सब कुछ ब्रह्माण्ड के ही अन्तर्गत है। यही सब तत्वों को गति देने वाली शक्ति है। इनके परे अव्यक्त ब्रह्म है।

प्रश्न ६– स्वामी! मैं इस सूक्ष्म विषय को भली-भाँति नहीं समझ सका। कृपया किसी सुगम दृष्टान्त के माध्यम से मुझे समझाइये।

उत्तर ६– अण्डाण्ड आँख का काला तिल है, पिण्डाण्ड उसके भीतर की परिधि है, ब्रह्माण्ड उसमें चमकने वाली ज्योति है। इस ज्योति का तेज ही ब्रह्म है।

तृतीय खण्ड

प्रश्न १– इस विराट (महत्) में--जिसे कि शरीर कहते हैं--पालन करने योग्य सर्वोपरि धर्म क्या है? इस धर्म का पालन करने के लिये हितकर आश्रम कौन-सा है? कुल कितने आश्रम हैं?

उत्तर १– कुल चार आश्रम हैं। यदि उनके सम्बन्ध में जानकारी हो तो स्वयं ही यह निश्चय कर सकते हो कि तुम्हें किस आश्रम का पालन करना है। अपनी प्रगति और रुचि के अनुकूल तुम स्वयं इसका निर्णय कर सकते हो। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चार आश्रम हैं।

प्रश्न २– विभिन्न व्यक्तियों द्वारा ब्रह्मचर्य शब्द की विविध व्याख्यायें प्रस्तुत की गई हैं और उसकी स्थिति का विवेचन किया गया है। मैं आपके द्वारा इस अवस्था का महत्व जानना चाहता हूँ।

उत्तर २– ठीक! यह समझा जाता है कि वे लोग ब्रह्मचारी कहे जाने चाहियें जिन्होंने विवाह नहीं किया है और गृहस्थी नहीं बने हैं। यह गलत है। केवल वे जो जग की भ्रान्ति से अपने मस्तिष्क को मुक्त रखते हैं, जो

सतत् प्रभु के ध्यान में लीन हैं, जो केवल सामान्य मनोरंजक वस्तुओं को न सुनते हैं, न देखते हैं, जिनकी सतोगुणी रुचि है, जो हर्ष और शोक से प्रभावित नहीं होते, जो अपने मस्तिष्क, बुद्धि और आत्मज्ञान को निरन्तर ब्रह्मतत्व के चिन्तन में व्यवस्थित रखते हैं केवल ऐसे व्यक्ति ही ब्रह्मचारी कहे जा सकते हैं।

प्रश्न ३-- गृहस्थाश्रम का वास्तविक तात्पर्य क्या है ?

उत्तर ३-- पत्नी के साथ वैवाहिक जीवन बिताना मात्र ही गृहस्थ आश्रम नहीं है जैसा कि प्रायः लोग समझते हैं। व्यक्ति को अपने परिवार और अपनी स्थिति के अनुरूप जो कर्त्तव्य हैं उन्हें पालन करता हुआ अपने कुटुम्ब तथा दूसरों के सबके साथ समता का व्यवहार वाला गृहस्थ है। उसे अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान होना चाहिये। उसे स्नेह और करुणा का व्यवहार करना चाहिये। संसार के प्रत्येक नवीन अनुभव से उसकी बुद्धि का विकास होना चाहिये। उसे शास्त्रों का परिचय होना चाहिये। धर्म के ग्रहण करने तथा अधर्म के त्याग करने के प्रयास में सतर्क रहना चाहिये। उसे अपनी पत्नी और सन्तान में संस्कार उत्पन्न करने चाहियें और अपना कर्त्तव्य समझते हुए पत्नी की संतान की सुरक्षा करनी चाहिये। उसे आठ मद कुचलने होंगे कुटुम्ब, सम्पत्ति, चरित्र, सौन्दर्य, यौवन, विद्वता, भूमि और यहाँ तक कि तप से भी उत्पन्न होते हैं। सदा अपने जीवन के चार लक्ष्यों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रति सजग रहना चाहिए। भौतिक वैभव से प्रभूत सम्पन्न होकर भी गर्वरहित होना चाहिये। दिन में कुछ समय का सदुपयोग परसेवा में करना चाहिये और उसमें किसी प्रकार के घरेलू कार्य का विचार नहीं होना चाहिये। अपने प्रति अपनी पत्नी में विश्वास उत्पन्न करना वाहिये पत्नी के प्रति विश्वस्त होना चाहिये। पति और पत्नी दोनों की रुचि भली-भाँति परिचित हों और परस्पर पूर्ण विश्वास एवं आस्था रखते हों। इन सब साधनों से ही गृहस्थ अपने आपको व्यक्त करता है।

प्रश्न ४-- वानप्रस्थ आश्रम का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर ४– इस अवस्था में मनुष्य अनुभव करता है कि सब अनेकताएँ असत्य और निराधार हैं। वह सब इच्छाओं का परित्याग कर देता है। संसार से सभी प्रकार का मोह छोड़ देता है, धनी बस्तियों में रहना उचित नहीं समझता। मन्त्रजाप द्वारा मोक्ष प्राप्ति का इच्छुक रहता है और इस प्रकार तपस्वी जीवन बिताता है। बिना पका भोजन खाता है अधिकतर फल पत्तियों आदि पर निर्भर रहता है, नम्र रहता है, सत्संग करता है, ऋषियों के उपदेश सुनता है और परमात्मा की अनुभूति के पथ पर सावधान होकर चलता है। अपनी साधना के एकान्त मार्ग में प्रवेश करने से पूर्व वानप्रस्थी को अपनी पत्नी की अनुमति प्राप्त करनी चाहिये और उसे अपनी पत्नी तथा संतान के लिये पूर्ण व्यवस्था कर देनी चाहिये। यदि पत्नी सहमत हो तो वह उसे भी अपनी आध्यात्मिक यात्रा में सहयोगी बना ले। किन्तु इस अवस्था में उन्हें भाई और बहन की तरह रहना होगा। अपने पूर्व-जीवन की भाँति नहीं। यदि पति पत्नी अपने आप भाई और बहन का सम्बन्ध निभा सकें तो घर में भी वान-प्रस्थ की साधना की जा सकती है। इसके विपरीत यदि घर से निकल कर भी जीवन में परिवर्तन नहीं आया तो वन में रह कर भी वानप्रस्थ का पालन नहीं हो सकता। वानप्रस्थी को विषयी लोगों के घर में नहीं ठहरना चाहिये। वर्ष के प्रारम्भ में उसने जो संकल्प लिया है उसकी पूर्ति करे। वर्षा, गर्मी, सर्दी उसे सभी ऋतुओं को सहन करना है। उसे शारीरिक विलास की ओर आकर्षित होने से बचने के प्रयत्न में निरन्तर जागरूक रहना और मस्तिष्क को असावधानी से सतर्क रहना है। उसे केवल हरि चिन्तन में ही आनन्द प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये और सम्मान पूर्वक जीवन बिताना चाहिये।

प्रश्न ५– सन्यास का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर ५– दृश्य और अनुभूत सभी आकर्षणों से संन्यासी परे है। इसके श्वांसप्रश्वांस में हरि चिन्तन रहता है। उसके लिये हरि चिन्तन ही जीवन की आवश्यकता और आवश्यक कर्त्तव्य होता है वह इसी में

आनन्द की अनुभूति करता है। संन्यासी ऐसा जीवन व्यतीत करता है और इसी का महत्व स्वीकार करता है। वह जानता है कि सम्पत्ति, कुटुम्ब, राग, मोह सब क्षणिक हैं और निश्चित रूप से नाशवान हैं। वह अपनी जाति-स्थिति संस्कार, उपनयन आदि वाह्य स्मृतियों को स्वीकार नहीं करता। वह साधकों का कौषेय वस्त्र धारण करता है, घनी बस्तियों में नहीं रहता, जो कुछ उसे प्राप्त होता है वह उसी में संतुष्ट रहता है। जहाँ उसे भोजन भी नहीं प्राप्त होता वह उस स्थान को भी बुरा नहीं कहता। वह एक ही स्थान पर दो बार भोजन नहीं करता और न ही किसी एक स्थान पर दो रात्रि शयन करता है। वह भूख और नींद दोनों का विजेता होता है। ऋतुओं के कष्ट की कोई चिन्ता नहीं करता। यह सदा प्रसन्न मन रहता है। और सदैव अपने ध्यान में स्थित अपने प्रभु के संसर्ग में रहता है।

प्रश्न ६– आजकल बहुत से लोग कौषाय वस्त्र धारण करके संन्यासी बने घूमते हैं। क्या वे सब आपके द्वारा वर्णित साधन से सम्पन्न हैं?

उत्तर ६– सभी लोगों के साधन सम्पन्न होने का प्रमाण नहीं दिया जा सकता, न साधन विहीनता का।

प्रश्न ७– बहुत से अपने आपको संन्यासी कहते हैं और आश्रम इत्यादि स्थापित करके सांसारिक कर्मों और भौतिक सम्पत्ति वैभव के लिये संघर्ष भी करते हैं, इनके विषय में क्या कहा जाये?

उत्तर ७– वास्तविक संन्यास और मानसिक संघर्षों से मुक्ति के लिये आश्रम इत्यादि भयंकर बाधायें हैं। संन्यासी के लिये आश्रम की व्यवस्था और तत्सम्बन्धी चिन्ता उसके पथ में महान बाधा है। मैं नहीं कहना चाहता कि ऐसे संन्यासियों को क्या कहना चाहिये। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि वे लोग संन्यासी कहलाने के अधिकारी नहीं हैं।

प्रश्न ८– स्वामी! आश्रम जैसी संस्था तो हम जैसे सामान्य जनों को मुक्ति का मार्ग बताती है फिर उन्हें बन्धन कैसे माना जाय। और आश्रम धन के बिना कैसे चल सकता है। मेरी धारणा है कि स्वेच्छा से दी गयी सहायता स्वीकार करना कुछ अनुचित नहीं है।

उत्तर ८-- प्रिय मित्र ! यदि ताला तोड़ कर सम्पत्ति हरण की गई है तब भी चोरी है, यदि दीवार तोड़ी गई है तब भी चोरी है, और यदि किसी को बहला-फुसला कर दिनदहाड़े माल ठगा है तो वह भी चोरी है। यदि संन्यासी की दृष्टि सम्पत्ति पर है--चाहे उसका उद्देश्य कुछ भी हो--वह उसकी आध्यात्मिक प्रगति के लिये हानिकारक है। उसे यह कार्य अपने किसी विश्वस्त भक्त पर छोड़ देना चाहिये। और स्वयं को निस्संग साक्षीवत् रहना चाहिये। उसे तो यही देखना चाहिये कि अपने आश्रम में आने वाले जीव को वह आध्यात्मिक आश्वासन दे सके। इसका कार्य आश्रम की उन्नति और समृद्धि में सहायता करना ही है। यदि उसने ऐसा किया तो अहंकार की अग्नि प्रज्वलित होकर उस संन्यासी की सभी सद्वृत्तियों को भस्म कर देगी। क्योंकि आश्रम की प्रगति का विचार अहम् का कारण बन जायगा। उसका आत्मानन्द समाप्त हो जायेगा। यह अहंकार की अग्नि केवल संन्यासी को ही नहीं उसके मार्ग दर्शन के आश्रित प्राणियों को भी भस्म कर देगी। मैं और मेरा की अनुभूति ऐसी विनाशक अग्नि को उत्पन्न करने का कारण होती है। मनुष्य को ऐसे मार्ग दर्शक का संग ढूंढना चाहिये जो इन सब से परे हो। जब आश्रम प्रमुख तत्व बन जाता है तब मार्गदर्शक को दृष्टा पर आधारित होना पड़ता है। संन्यासी को संसार पर आश्रित नहीं होना चाहिये उसे पूर्णतः निःस्संग होना चाहिये। यही संन्यासी का चिह्न है।

चतुर्थ खण्ड

प्रश्न १-- लोग अवधूतों के विषय में भी चर्चा करते हैं। अवधूत कौन होते हैं और उनकी क्या विशेषताएँ हैं ?

उत्तर १-- वानप्रस्थी और सन्यासियों की भाँति उन्हें भी सारे मोह और घृणा से मुक्त होना चाहिए। वे अपने चारों ओर के वातावरण में रुचि नहीं

लेते। चाहे वे वन में हों या नगर में बिल्कुल चिन्तित नहीं होते उनका किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं होता। वे भूत, वर्तमान और भविष्यत् सभी से निश्चित होते हैं। वे पत्थरों और काँटों में भी भ्रमण करते हैं। वे शान्त, आत्ममग्न, नित्यानन्द, नित्य प्रबुद्ध होते है। वे न सुख की खोज करते हैं न सुरक्षा की न उन्हें सोने के स्थान की चिन्ता होती है न भोजन की क्योंकि आनन्द ही उनका आधार होता है। अवधूत आज भी हिमालय की गुफाओं में प्राप्त हो जाते हैं। वे अपने आत्मानन्द में मग्न रहते हैं। सब कोई उन्हें नहीं देख पाते। केवल तुम्हारा सौभाग्य ही तुम्हें उनके समक्ष ले जा सकता है।

किन्तु अनेकों ऐसे भी हैं जो स्वयं को अवधूत कहते हैं और इसी नाम से चारों ओर घूमते हैं। सच्चे अवधूत समाज की दृष्टि में नहीं आते हैं। यहाँ तक कि यदि वे कभी मार्ग भूलकर भी किसी नगर में आ निकलते हैं तो दूसरों की दृष्टि से बचते हुए चुपचाप इधर-उधर हो जाते हैं। जब तुम किसी अवधूत को स्वतन्त्रापूर्वक जन समाज में घूमते और सांसारिक कृत्यों में व्यस्त देखो तो उसे यमदूत समझो।

प्रश्न २-- कोई देह धर्म से (अर्थात शरीर सम्बन्धी कर्त्तव्यों) की विवशता में कब तक पड़ा रहता है ?

उत्तर २-- जब तक जीवात्मा का बोध नहीं हो जाता। जब उसकी खोज करके उसे जान लिया जाता है तब कोई आवश्यकता हीं नहीं रहती।

प्रश्न ३-- किन्तु कोई कब तक इस जीवात्मा का ज्ञान प्राप्त करता है ?

उत्तर ३-- जब तक कि सरिता सागर में नहीं समा जाती। जीवी की सरिता जब तक अपने उसी स्थान तक नहीं पहुँचती है जहाँ से उसकी उत्पत्ति हुई है। वह सागर है--परमात्मा।

प्रश्न ४-- तब 'मोक्ष' क्या है ?

उत्तर ४-- सारे बन्धनों से मुक्ति का मोक्ष है। नित्य सत्य, स्थित, नित्य शुद्ध आत्मतत्व की प्राप्ति ही मुक्ति है। नित्य परिवर्तनशील, नित्य असत्य, नित्य अशुद्ध आत्मा तत्व से छुटकारा पाना ही मुक्ति है।

प्रश्न ५-- स्वामी, क्या यह उपलब्धि सभी के लिए नहीं है ?

उत्तर ५-- तुम ऐसा क्यों कहते हो। हर व्यक्ति जो साधन सम्पन्न होगा इसे प्राप्त कर लेगा और जो प्रयत्नशील हैं वे प्राप्त भी कर रहे हैं। हर रोगी को औषधि की आवश्यकता होती है तुम यह नहीं कह सकते कि कुछ ही रोगियों को दवा की आवश्यकता होती है। किन्तु यदि औषधि मूल्यवान है तो केवल वे ही उससे लाभ उठा सकेंगे जो उसे प्राप्त कर सकेंगे। प्रभु का अनुग्रह प्राप्त करना कठिन है। उसके लिए भारी मूल्य चुकाना पड़ता है। मूल्य दो--तात्पर्य यह है कि साधना करो और उनका अनुग्रह प्राप्त करो। वह तुम्हें भव रोग मुक्त कर देगा।

प्रश्न ६-- किन व्यक्तियों को इस साधना की अधिक आवश्यकता है ?

उत्तर ६-- जीवन और मृत्यु के ज्वार से जो भी सुरक्षित होना चाहते हैं उन सभी को इसकी आवश्यकता है क्योंकि इस ज्वार में सभी बह रहे हैं।

प्रश्न ७-- बाबा, मनुष्य के जन्म लेने का कारण क्या है ?

उत्तर ७-- कर्म का प्रभाव।

प्रश्न ८-- कर्म ? कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर ८-- कर्म तीन प्रकार का होता है। कुकर्म, सुकर्म और दोनों का समन्वित रूप। कुछ लोग एक चौथा प्रकार भी बताते हैं वह है ज्ञानी का कर्म जो भले-बुरे से परे होता है।

प्रश्न ९-- कुकर्म क्या है ?

उत्तर ९-- इसे दुष्कर्म कहा जाता है। प्रभु के भय और पाप का विचार किये बिना जो कर्म किये जाते हैं वे सब दुष्कर्म हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर्य इन षड्रिपुयों के प्रभाव से जो कर्म किये जाते हैं, ये सभी दुष्कर्म हैं। वे कर्म जो मनुष्य में पशु प्रवृत्ति जागृत करते हैं, दुष्कर्म हैं। वे सब कर्म दुष्कर्म हैं जिन से यह व्यक्त होता है कि मनुष्य में विवेक विलक्षण और वैराग्य नहीं रह गया है। जो कर्म दया, धर्म, सत्य, शान्ति और प्रेम से रहित हैं सभी दुष्कर्म हैं।

प्रश्न १०-- सत्कर्म क्या है ?

उत्तर १०-- भगवान से डरकर और पाप का भय मानकर किये गये कर्म-सत्य, धर्म, शान्ति और प्रेम को आधार मानकर किये गये कर्म सत्कर्म

कहलाते हैं।

प्रश्न ११-- बाबा (सुकर्म और दुष्कर्म से मिले हुए) कर्म क्या हैं ?

उत्तर ११-- ये बड़े मनोरंजक और विचित्र कर्म होते हैं प्रत्यक्ष में देखने पर तो ये भगवान से और पाप से डर कर किये जाते हैं तथापि उनमें विपरीत रहस्य निहित रहते हैं। लोग धर्मशाला, पौशाला आदि स्थापित करते हैं किन्तु वे वहाँ के कर्मचारियों को समय पर वेतन नहीं देते। उनका लक्ष्य केवल प्रसिद्धि प्राप्त करना होता है। गरीबों को फटे, टूटे बेकार वस्त्र देते हैं और खोटे सिक्के देते हैं। वे जो कुछ भी करते हैं केवल अपनी प्रसिद्धि के लिए करते हैं।

प्रश्न १२-- स्वामी, आपने ज्ञान कर्म के विषय में भी कहा था ?

उत्तर १२-- हाँ, ज्ञान कर्म नाम है। उन सब कर्मों का जो पवित्र ग्रन्थों में से कुछ सीखने के लिये अथवा ज्ञानबद्ध गुरुओं से द्वैत के बन्धन से मुक्ति का उपाय जानने के लिए, संसार के मिथ्यात्व को समझने के लिए और सत्य, धर्म, शान्ति, प्रेम के महत्व में दृढ़ आस्था प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं। ये सारे कर्म व्यष्टि को समष्टि में लीन करने का प्रयास होते हैं।

पंचम खण्ड

प्रश्न १-- स्वामी ! प्रायः लोगों से अमानस्क शब्द सुना है। इसका क्या अर्थ है?

उत्तर १-- यह समस्त सृष्टि ! जब इसकी अनुभूति नित्य दृष्टा साक्षी को हो जाती है तब यह उसी प्रकार दृष्टि से विलीन हो जाती है जैसे सूर्य से कोहरा। उसी स्थिति को अमानस्क कहा जाता है।

प्रश्न २-- तब ज्ञान का क्या होता है ?

उत्तर २-- वह भी विलीन हो जाता है।

प्रश्न ३-- जिस साक्षी के सम्बन्ध में आपने कहा है वह स्वप्न अवस्था में कहाँ रहता है ?

उत्तर ३-- यह जीवी में होता है। यह केवल देखता ही नहीं अपितु स्वयं ही निर्माता होता है।

प्रश्न ४-- और गाढ़ सुषुप्ति अवस्था में ?

उत्तर ४-- यह अपनी पूर्ण (परिवर्तनरहित) सत्यता में रहता है।

प्रश्न ५-- और चतुर्थ स्थिति अर्थात सुषुप्ति से परे तुरीया में ?

उत्तर ५-- यह अपरिवर्तनशील ईश्वर स्थान में लीन हो जाता है।

प्रश्न ६-- परमार्थ का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर ६-- शरीर और अनुमति से परे जो परम अर्थ है।

प्रश्न ७-- परमपद के विषय में जो कहा जाता है फिर वह किस प्रकार होगा ?

उत्तर ७-- वह नाम रूप से रहित होगा। क्रिया नाम और कार्य रूप से रहित होगा।

प्रश्न ८-- स्वामी ! ईश्वर जगत से परे है अथवा जगत में व्याप्त है ?

उत्तर ८-- वह जगत में सर्वत्र भरा हुआ है और उससे परे भी है अतः कुछ भी उससे बाहर नहीं है, सब कुछ उसी में है। सब नाम उसी के हैं कोई नाम उसके अतिरिक्त नहीं है।

प्रश्न ९-- सृष्टि को परिपूर्ण करने वाले सर्वेश्वर को किस प्रकार इंगित किया जाये ?

उत्तर ९-- उसे अनेक नामों से पुकारा जाता है--परमपद, परमार्थ, अशरीर, परिपूर्ण; अवाँगयवोगोचर आदि-आदि उसके अनेकों नाम हैं।

प्रश्न १०-- क्या यह अस्तित्व सत्य है, नूतन है, अथवा सनातन है ?

उत्तर १०-- निस्सन्देह यह सनातन है नूतन नहीं।

प्रश्न ११-- अन्तिम पुरुषार्थ क्या है ?

उत्तर ११-- मोक्ष।

प्रश्न १२-- विद्या के विषय में चर्चा करते हुए लोग चार प्रकार की विद्या बताते हैं, वे क्या हैं ?

उत्तर १२-- वे हैं अन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति।

प्रश्न १३-- ये नाम मेरे लिये सब नये हैं। अन्वीक्षकी वास्तव में क्या है ?

उत्तर १३-- आत्मा और अनात्मा में भेद व्यक्त करने वाली विद्या अन्वीक्षकी है।

प्रश्न १४-- त्रयी ?

उत्तर १४-- त्रयी वह विद्या है जिससे मनुष्य को उसके नित्य वैयक्तिक कर्मकाण्ड का ज्ञान होता है और उनके द्वारा स्वर्ग आदि का प्रयास किया जाता है।

प्रश्न १५-- वार्ता क्या शिक्षा देती है ?

उत्तर १५-- कृषि तथा अन्य उपादक प्रयत्न।

प्रश्न १६-- दण्ड नीति का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर १६-- इसी के अनुसार शासक और समाज के संरक्षक शासन करते हैं और सुरक्षा करते हैं। यह विद्या जीविका और अन्न आदि की प्राप्ति का साधन बताती है।

प्रश्न १७-- इन विद्याओं में से कौन मनुष्य को जीवन के चक्र में धकेलती है ?

उत्तर १७-- केवल प्रथम अर्थात अन्वीक्षकी के अतिरिक्त अन्य सभी जन्म मृत्यु के चक्र में डालने वाली हैं।

प्रश्न १८-- आत्मिक विजय के लिये बुद्धि पर प्रभुत्व करना आवश्यक है परन्तु मस्तिष्क को निर्दोष बनाने के लिये किस योग्यता को प्राप्त करना आवश्यक है ?

उत्तर १८-- चार विशेष योग्यतायें हैं मयत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा।

प्रश्न १६-- स्वामी ! इनकी व्याख्या करने का कष्ट करें ?

उत्तर १६-- विनम्र और सज्जन जनों का संग, प्रभु के नाम और स्वरूप में स्नेह मयत्री कहलाता है, करुणा का तात्पर्य है पीड़ितों के प्रति दया भाव।

प्रश्न २०-- मुदिता का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर २०-- मनुष्य को उदार चेता और परोपकारी तथा पीड़ितों की सहायता करने वाले लोगों से मिलकर जो आनन्दानुभूति होती है वही मुदिता है।

प्रश्न २१-- उपेक्षा ?

उत्तर २१-- उदासीनभाव अर्थात् दुष्ट भावनाओं से निस्संग रूप से, राग द्वेष से रहित होना।

प्रश्न २२-- जिस प्रकार से उपरोक्त चार गुण कहे गये हैं उसी प्रकार चतुर्विध

मुक्ति की भी चर्चा करते हैं। भक्ति के ये चारों प्रकार क्या हैं--स्वामिन ?

उत्तर २२-- भक्ति के समस्त विविध रूप इन वर्गों के अन्तर्गत ग्रहण किये जा सकते हैं। आर्त-अर्थार्ती जिज्ञासु और ज्ञानी। आर्त भक्त वह है जो आत्मिक असन्तोष से विकल होकर प्रभु से निवेदन करता है और भक्ति की कामना करता है।

प्रश्न २३-- अर्थार्थी किसे कहते हैं ?

उत्तर २३-- वे भक्त जो धन सम्पत्ति आदि के अभिलाषी होते हैं अथवा आत्मिक बल के अभिलाषी होते हैं और इन वरदानों की प्राप्ति के लिये प्रभु से याचना करते हैं अर्थार्थी कहलाते हैं।

प्रश्न २४-- जिज्ञासु कौन हैं ?

उत्तर २४-- वे भक्त जो मुक्ति की कामना का आग्रह और अनुरोध करते हैं और उस पूर्ण तत्व के अन्वेषक हैं।

प्रश्न २५-- और ज्ञानी ?

उत्तर २५-- वह भक्त जो द्वैतज्ञान का त्याग कर चुका है जिसका द्वन्दभाव समाप्त हो चुका है, जिसने संसार के आधारभूत सत्य को साध, अपने अस्तित्व को जान लिया है।

प्रश्न २६-- कुछ ऐसे भक्तों के नाम बताइये जो इन भक्तियों के माध्यम से प्रसिद्ध हो चुके हों जिससे कि हमें यह विषय स्पष्ट हो सके।

उत्तर २६-- अनेकों नाम हैं आर्थ भक्तों में द्रौपदी, प्रह्लाद, सक्खूबाई आदि नाम लिये जा सकते हैं। ध्रुव, अर्जुन आदि अर्थार्थी थे। उद्धव, राधा आदि को जिज्ञासु कहा जा सकता है। शुक सनकादि ज्ञानी भक्त कहलाते हैं।

षष्ट खण्ड

प्रश्न १-- स्वामी क्या उन लोगों को भी मुक्ति का लक्ष्य प्राप्त करने में बाधायें होती हैं जो आध्यात्म के मार्ग पर अग्रसर हो चुके हैं ?

उत्तर १-- अवश्य, अवश्य, भूत, वर्तमान और भविष्य की बाधायें।

प्रश्न २-- ये बाधायें क्या हैं ? अतीत की बाधा का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर २-- अतीत की स्मृतियों का स्मरण और उनसे प्रभावित होना ही अतीत की बाधा है।

प्रश्न ३-- वर्तमान की बाधा ?

उत्तर ३-- वर्तमान की बाधा का चार प्रकार से प्रभाव होता है। विषयसाक्ति (उपदेश के भाव की उपेक्षा पुस्तक ज्ञान का अधिक आग्रह) प्रज्ञामान्द्य (बुद्धि की मन्दता जो गुरुजनों और बुद्धिभक्ति के कथनों को समझने में बाधा उत्पन्न करती है) कुतर्क और विपयर्य दुराग्रह (केवल अपने ही विचार की सत्यता का अतिशय छलपूर्ण आग्रह)।

प्रश्न ४-- अनागत बाधा का क्या स्वरूप होता है ?

उत्तर ४-- अनागत चिन्ताओं और कठिनाइयों का अनुमान बाधा उत्पन्न करता है।

प्रश्न ५-- मैंने चार प्रकार की सृष्टि के विषय में लोगों को कहते सुना है कृपया उन्हें स्पष्ट कीजिये।

उत्तर ५-- अण्डज, स्वेदज, उद्भिज और जरायुज कहलाते हैं।

पश्न ६-- इन शब्दों का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर ६-- अण्डज--अण्डे के माध्यम से उत्पन्न। स्वेदज--स्वेद से उत्पन्न, उद्भिज--धरती से उत्पन्न, जरायुज--रज और वीर्य से उद्भुत। चिड़ियें अण्डज सृष्टि हैं, जूँ, पिस्सू आदि स्वेदज हैं। चीटियाँ वृक्ष आदि उद्भिज हैं। मनुष्य-पशु आदि जरायुज हैं।

प्रश्न ७-- अच्छा स्वामिन् ! इन में आत्मज्ञानी कौन होते हैं। परमात्मा के उपासक कौन होते हैं ? क्या उनके विशेष वर्ग होते हैं ?

उत्तर ७-- निस्सन्देह इनमें भी चार प्रकार होते हैं।

प्रश्न ८-- उनके नाम ?

उत्तर ८-- द्विज, मुनि, अल्पबुद्धि, विदितात्मा।

प्रश्न ९– इन चारों की विशेषतायें क्या हैं ?

उत्तर ९– द्विज वर्गीय परमेश्वर को पहिचानते हैं।

प्रश्न १०– मुनि ?

उत्तर १०– ये प्रभु को अपने हृदय में अनुभव करते हैं।

प्रश्न ११– अल्पबुद्धि (अल्पज्ञ) ?

उत्तर ११– इनके लिये मूर्ति चित्र आदि प्रत्यक्षा प्रतीकों की आवश्यकता होती है जो उस प्रभु के दिव्य सौन्दर्य और महत्ता को व्यक्त कर सकें। वे प्रतीकों की उपासना करते हैं।

प्रश्न १२– विदितात्मा ?

उत्तर १२– वे प्रभु को विश्वव्यापी जानते हैं। और सर्वत्र उसी का दर्शन करते हैं।

प्रश्न १३– इनमें सब से महान कौन है ?

उत्तर १३– अपनी अपनी स्थिति में सब महान हैं तथापि जो सर्वत्र सर्वदा उस सर्वात्मा की अनुभति कर सकें वे ही महान् हैं।

प्रश्न १४– स्वामी ! किन चारित्रिक गुणों को हमें छोड़ना चाहिये, जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति की खोज करने वालों के मार्ग में क्या बाधायें हैं ?

उत्तर १४– वे छः हैं। अरिषड्वर्ग। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। इनसे बचना है ?

प्रश्न १५– धन, सम्पत्ति, आदर, मान, कीर्ति और संतान की इच्छा इनकी गिनती करना व्यर्थ है। ये अनन्त हैं। इस मानस कल्पित मिथ्या, क्षणिक एवं अवणृर्त्तावक्र जगत से किसी भी प्रकार राग काम ही है।

प्रश्न १६– क्रोध क्या है ?

उत्तर १६– दूसरों को हानि पहुँचाने की और उसके विनाश करने की इच्छा।

प्रश्न १७– लोभ ?

उत्तर १७– व्यक्ति विशेष द्वारा अर्जित एवं प्राप्त सम्पत्ति में से किसी अन्य को उसका एक अंश मात्र भी न देने का संकल्प, यह विचार कि महान संकट के समय भी सम्पत्ति का उपयोग न हो लोभ ही कहलाता है।

प्रश्न १८– मोह का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर १८– यह भ्रान्ति कि कोई दूसरे से मेरे अधिक निकट है और फिर उसे औरों की अपेक्षा अधिक प्रसन्न करने का यत्न तथा इस आधार पर उनके लिये अधिकाधिक कमाकर एकत्रित करने का प्रयास।

प्रश्न १९– मद ?

उत्तर १९– किसी में इस अनुमान से कि उसके पास दूसरों से बढ़कर विद्वता है, शक्ति है, सम्पत्ति है, प्रभुत्व के प्रदर्शन का भाव प्रकट होना मद कहलाता है। कभी-कभी वैभव के न होने पर भी मनुष्य अपने गुरुजन के प्रति अशिष्ट हो जाता है। वह केवल अपने ही सुख और सुरक्षा की इच्छा करता है। मद अहं की चरम सीमा है।

प्रश्न २०– अन्तिम को आपने मात्सर्य बताया उसका तात्पर्य क्या है स्वामी ?

उत्तर २०– दूसरों को अपने जैसा सुखी देखकर उसे सहन करने में असमर्थ होना ही मात्सर्य है।

प्रश्न २१– कुछ अन्य विशेषतायें भी हैं जो दम्भ दर्प आदि कहलाती हैं। ये क्या व्यक्त करती हैं ?

उत्तर २१– दम्भ, यज्ञ, यागादि करने को निलम्बित करता है। विपुल धन दान करने को उत्सुक करता है जिससे कि वह संसार में ख्याति प्राप्त कर सके। सुखी और सम्पत्तिवान होने पर जो गर्व उत्पन्न होता है वह दम्भ कहलाता है ?

प्रश्न २२– ईर्ष्या का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर २२– दूसरों के विषय में यह इच्छा कि वे दुखी हों, उनपर आपत्तियाँ और चिन्तायें आवें। और जो कष्ट मुझे प्राप्त हैं वैसे ही दूसरों को भी प्राप्त हों यह भावना ईर्ष्या कही जाती है।

प्रश्न २३– तो इस प्रकार क्या यह असूया से भिन्न मनोविकार है ?

उत्तर २३– हाँ असूया का अर्थ है सदा औरों का बुरा करने का विचार करना। इस इच्छा से दूसरों को कठिनाई एवं आपत्ति में डालने का यत्न असूया कहा गया है। इन सब को अन्तरंग शत्रु कहा जाता है। इन शत्रुओं द्वारा फैलाये गये भ्रान्ति के जाल में जब तक मानव फँसा रहेगा उसके मन में मोक्ष की अभिलाषा नहीं जागृत हो सकेगी।

सप्तम खण्ड

प्रश्न १-- यह किस प्रकार समाप्त हो सकती है ?

उत्तर १-- विवेक और विज्ञान इसका अन्त कर देंगे ।

प्रश्न २-- जीवी जो बुद्धि में प्रतिबिम्बित होता है तथा कूटस्थ है क्या ये दोनों एक दूसरे से अपरिवर्तित हैं ।

उत्तर २-- यद्यपि सारे दृश्य में यह एकदूसरे से अपरिवर्तन व्यक्त नहीं होता तथापि यह स्थिति है अवश्य ।

प्रश्न ३-- यह स्थिति कैसे है ?

उत्तर ३-- कूटस्थ असंग, स्थिर, अपरिणामी, नित्य मुक्त है । किन्तु अपरवर्तित स्थिति के कारण अतिरिक्त जान पड़ता है । यह उन दोनों के सह अस्तित्व का परिणाम है ।

प्रश्न ४-- कुछ विचारकों का मत है कि तत् और त्वम एकाकी हैं और तत्सम् हैं । यह किस प्रकार है ? तत्वम् का क्या तात्पर्य है ? कृपया स्पष्ट कीजिये ।

उत्तर ४-- घट, मठ और पट को लो । ये तीनों प्रत्यक्ष हैं । ये तत्सम् नहीं हैं । किन्तु आकाश जो इन तीनों में हैं एक ही है । जब उपधि अर्थात् सीमा हट जाती है तो घटाकाश, मठाकाश और पटाकाश का निस्सीम महाकाश में विलीन हो जाना स्वाभाविक ही होता है । प्रकाश भी इसी प्रकार है । अन्तः प्रकाश बाह्य प्रकाश में विलीन हो जाता है ।

प्रश्न ५-- स्वामिन ! आपने बताया है कि पंच तत्वों से निर्मित शरीर में स्थित शरीरी को को पंच कोशों से आवृत्त आत्मा की अनुभूति करनी पड़ती है । इन पंचकाशों का वास्तविक रूप क्या है ?

उत्तर ५-- कोष का अर्थ है आवरण । तलवार म्यान में रखी जाती है । धन कोष में रखा जाता है । आपको अनुभव होना चाहिये कि इस पाँच आवरणों से आच्छादित कोष में रुखी हुई वस्तु ही वास्तव में मैं हूँ । अपने सत्यस्वरूप को जानने के लिये मनुष्य को अपने पाँचों आवरणों का निवारण करना पड़ेगा ।

प्रश्न ६-- स्वामिन् ! ये पंचकोश कौन से हैं ?

उत्तर ६-- ये पंचकोश--अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय

कोष और आनन्दमय कोश कहलाते हैं।

प्रश्न ७-- अन्नमय कोश का क्या मतलब है ?

उत्तर ७-- माता के गर्भ में इस शरीर का विकास उस अन्न की सहायता से हुआ जो माता ने खाया, जन्म के उपरान्त भी उसी की पुष्टि और उसका विकास केवल अन्न से ही हो रहा है। मृत्यु के उपरान्त यह धरती का एक अग बन जाता है जो कि अन्न उत्पन्न करती है अतः यह अन्नमय कोश कहलाता है।

प्रश्न ८-- अन्नमय कोष का क्या महत्व है ?

उत्तर ८-- यह स्थूल शरीर कहलाता है जो हर्ष और शोक को धारण करता है। सुखी और दुखी होता है।

प्रश्न ९-- क्या इसका यही नाम है अथवा इसके अतिरिक्त भी इसका कुछ नाम है ?

उत्तर ९-- हाँ यह भोगायतन भी कहलाता है।

प्रश्न १०-- प्राणमय कोश का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर १०-- पाँच ज्ञानेन्द्रियों का क्षेत्र प्राणमय कोश है जो पंच प्राणों से निर्मित होता है।

प्रश्न ११-- स्वामिन्! ऐसा ज्ञात होता है कि उप-प्राण भी होते हैं।

उत्तर ११-- ये पंच प्राण नाग, कूर्म गृध्र, देवदत्त और धनंजय हैं।

प्रश्न १२-- इन पाँचों में से प्रत्येक का क्या कार्य है ?

उत्तर १२-- नाग डकार लाने का कारण है, कूर्म पलकों में गति उत्पन्न करता है, गृध्र नासिका रन्ध्र से छींक आदि लाता है, देवदत्त जम्भाइयों का कारण है, धनंजय शरीर में वसा उत्पन्न करता है। मृत्यु के उपरान्त भी ये अल्प प्राण शरीर को प्रभावित करते हैं और शव में परिवर्तन उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न १३-- मनोमय कोश से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर १३-- मन--जिसकी पाँचों इन्द्रियाँ यंत्र हैं, तथा ज्ञानेन्द्रियों का क्षेत्र। यह प्राणमय कोश के अन्तर्गत है।

प्रश्न १४-- आप प्रायः मन कहते हैं। स्वामी यह मन क्या है ?

उत्तर १४– जिससे तुम यह अनुभव करते हो कि मैं शरीर हूँ और संसार की सब वस्तुओं का शरीर से सम्बन्ध जोड़ कर यह अनुभव करते हो कि वे मेरी हैं। जो कि इन्द्रियों के माध्यम से बाहर आकर दृश्यमान पदार्थों की ओर दौड़ता है उनमें से आनन्द की उपलब्धि करने के लिये यह सदा चंचल रहता है। एक विषय से दूसरे विषय की ओर दौड़ा करता है। यही मन है।

अष्टम खण्ड

प्रश्न १– स्वामिन् मनुष्य को यह अनुभव किस प्रकार हो सकता है कि वह अन्नमय कोश से पृथक है, उससे परे है और उससे महान है ?

उत्तर १– शरीर जन्म से पूर्व भी प्रत्यक्ष नहीं रहता और मृत्यु के उपरान्त भी प्रत्यक्ष नहीं रहता। केवल जन्म और मृत्यु के अवान्तर काल में उसकी स्थिति रहती है। शरीर का आदि और अन्त भी है, उसकी उत्पत्ति और विनाश भी होता है। उत्पन्न और नष्ट होने वाली वस्तुएँ परिणाम कहलाती हैं और परिणाम कुछ स्थितियों के अन्तर्गत सीमित होते हैं अतः शरीर भी सीमित वस्तु है। ज्ञानी स्वयं को कहता है मैं भौतिक नहीं हूँ, मेरा कार्य और कारण नहीं है। मैं इस स्थूल शरीर से भिन्न हूँ। अतः मैं अन्नमय कोश नहीं हो सकता। मैं अन्नमय कोश का ज्ञाता हूँ, इस ज्ञान के भली-भाँति दृढ़ हो जाने पर सत्य का बोध होता है। उसे बोध आवश्यक रूप से होना चाहिये कि वह अन्नमय कोश नहीं है।

प्रश्न २– किसी को यह किस प्रकार अनुभव होगा कि वह प्राणमय कोष से भिन्न एवं परे है ?

उत्तर २– रात्रि में जब सब सोते होते हैं प्राण गतिशील रहते हैं किन्तु किसी को भी यह नहीं भासता कि उसमें अथवा उसके निकट चारों ओर क्या हो रहा है। यदि सोते समय उसके शत्रु आ जाते हैं तो वह युद्ध नहीं

करता। उस समय एक काष्ठ की भांति निश्चेष्ट एवं क्रिया शून्य रहता है किन्तु मैं सदा जाग्रत साक्षीरूप हूँ, निश्चेष्टता मेरा स्वभाव नहीं है। मैं सब अच्छादनों से रहित इस प्रकार की विवेकशीलता उसमें स्पष्ट रूप से प्रकट होनी चाहिये।

प्रश्न ३– स्वामिन्! इस शरीर और मन से हम बहुत से पाप और पुण्य करते हैं जिनके फलस्वरूप शोक और हर्ष हमें प्राप्त होते हैं कृपया स्पष्ट कीजिये कि यह 'मैं' क्या है? जिसके विषय में आप बार बार कहते हैं, यह 'मैं' कर्ता है, शोक हर्ष का उपभोक्ता है अथवा कुछ अन्य!

उत्तर३– यह एक क्षण के लिये भी न कर्ता है न भोक्ता। क्रिया करने वाला कर्ता कहलाता है, क्रिया का तात्पर्य है परिवर्तन क्रिया का तात्पर्य परिवर्तन का परिणाम होता है न? अतः यद्यपि ऐसा भासता है कि देही कर्ता है तथापि 'मैं' परिवर्तन रहित है और नितान्त अपरिणामी हैं। कर्तृत्व अन्तःकरण का गुण है। कर्ता और कर्म के फल के भोग का आभास 'मैं' में होता है।

प्रश्न ४– यदि ऐसा है तो हमें संसार आगमन और निष्क्रमण का ज्ञान किस प्रकार होगा?

उत्तर ४– एक जगत् से दूसरे जगत् में संचरण अथवा एक जन्म से दूसरे जन्म में प्रवेश अन्तःकरण अर्थात् लिंग देह का होता है। अपने संचित कर्मों के अनुसार एक से दूसरे देह में अन्तःकरण जाता है। संसार में आगमन और निष्कासन की क्रिया इस सीमित लिंग देह में होती रहती है। तुम तो आकाश की भांति सर्वव्याप्त हो अपरिणामी हो न तुम्हारा इस जगत् में आगमन होता है न प्रत्यावर्तन। आवागमन तुम्हारा स्वभाव ही नहीं है।

प्रश्न ५-- तब मोक्ष प्राप्ति का कारण क्या है?

उत्तर ५-- विज्ञान मोक्ष प्राप्ति का कारण है।

प्रश्न ६– कुछ महापुरुष कहते हैं इसका कारण योग है--क्या यह सत्य है?

उत्तर ६-- यह भी सत्य है। क्या एक ही स्थान तक पहुँचने के दो मार्ग नहीं हो सकते?

प्रश्न ७-- किन्तु अधिक श्रेष्ठ कौन-सा है ?

उत्तर ७-- दोनों ही श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण हैं। दोनों एक ही लक्ष्य पर पहुंचाते हैं। हाँ तुम एक ही समय में दोनों पर यात्रा नहीं कर सकते। अपनी आन्तरिक वृत्ति के अनुसार जो पथ जिसे रुचिकर हो वह उसे चुन ले और उसके अनुकूल साधना करे। साधक के लिये दोनों ही बन्धन से मुक्त करने वाले हैं।

प्रश्न ८-- स्वामिन्! ज्ञान की प्राप्ति योग से होती है अथवा योग की ज्ञान से ?

उत्तर ८-- वस्तुस्थिति यह है कि योग ज्ञान प्रदान करता है और वही ज्ञान सुगमता पूर्वक मोक्ष प्रदान करता है।

प्रश्न ९-- योग का क्या प्रभाव होता है और उससे किस प्रकार लाभ प्राप्त होता है ?

उत्तर ९-- योग अग्नि की भाँति होता है। इसीलिये उसे योगाग्नि कहा जाता है। यह सारे पापों को भस्म कर देता है और इस प्रकार अन्तःकरण पवित्र हो जाता है तब उसमें ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञान का प्रकाश अज्ञान और भ्रम के अन्धकार को नष्ट कर देता है। इसी स्थिति का नाम मुक्ति है।

प्रश्न १०-- क्या योग में इतनी शक्ति होती है ?

उत्तर १०-- इसमें क्या पूछना है। योग में यह शक्ति निश्चित रूप से है। मनुष्य चाहे जितना विद्वान हो, चाहे जितना महान योगी हो चाहे उसकी कितनी ही गम्भीर बुद्धि हो जब तक वह अपनी चित्त वृत्तियों का निरोध नहीं कर लेता वह मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता। योग के बिना इनका पापों से छुटकारा नहीं हो सकता। जब तक चित्त वृत्तियाँ पापों से मुक्त नहीं होंगी अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा। अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होगी। अन्तःकरण की शुद्धि के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती और ज्ञान के बिना मोक्ष सम्भव नहीं हो सकता। अतः योग ही एकमात्र आधार है।

प्रश्न ११-- स्वामिन्! यह समझ में आना कठिन है। इसे सुबोध करने के लिए कोई ऐसा दृष्टान्त प्रस्तुत कीजिये जिससे कि रहस्य निरक्षर की भी

समझ में आ सके।

उत्तर ११– जब आँधी चलती है क्या तब कोई दीपक जल सकता है। इसी प्रकार जब वासनाओं की प्रबल आँधी चलती है ज्ञान का दीपक नहीं जल सकता। यदि उसे किसी प्रकार जलाया भी गया तो वह तुरन्त बुझ जायगा।

प्रश्न १२– योग से क्या प्राप्ति होती है ?

उत्तर १२– वासना जगत की समस्त प्रवृत्तियों को नष्ट करती है और मन के उद्वैग का शमन करती है।

नवम खण्ड

प्रश्न १– आपने बताया कि ज्ञान अनिवार्य है। कृपया बताइये कि ज्ञान का वास्तविक कार्य क्या है ?

उत्तर १– ज्ञान आत्मस्वरूप की अनुभूति कराता है–अर्थात् तुम्हारी सत्यता तुम पर प्रकट करता है।

प्रश्न २– और योग ! यदि मनुष्य योग नहीं करता तो क्या होता है ?

उत्तर २– ऐसा मनुष्य लंगड़े व्यक्ति की भांति होता है।

प्रश्न ३– यदि मनुष्य को ज्ञान न प्राप्त हो ?

उत्तर ३– तब वह अन्धे व्यक्ति जैसा है।

प्रश्न ४– ऐसा कहा जाता है कि योग समस्त अभावों को नष्ट कर देता है, सभी अपराधों को मिटा देता है। यह कैसे होता है ?

उत्तर ४– क्या अग्नि पर पकाये बिना चावल खाने योग्य बन सकता है। योग व अन्य साधनाओं से चित्त कोमल होता है। योग साधना तप कहलाती हैं। योगाग्नि से चित्त तप्त होता है। उसके अतिरिक्त योग और ज्ञान तेल और अग्नि की लपट के समान हैं। योग तेल है और ज्ञान उससे प्रज्वलित होने वाले दीपक की ज्योति है।

प्रश्न ५– स्वामिन् ! मुझे क्षमा करें यदि मैं प्रश्न करूँ कि क्या जितने लोग वेदान्त

का उपदेश कर रहे हैं वे सब इस सत्य की अनुभूति कर चुके हैं ?

उत्तर ५-- यह कैसे कहा जा सकता है। तुम स्वयं उन्हें परख सकते हो। यदि उनका हृदय पवित्र है, विचार शुद्ध है, मन निर्मल है और उन्हें अन्तर्यामी, सर्वान्तरयामी परमात्मा का ज्ञान है तो वे वास्तव में वेदान्त का उपदेश देने के अधिकारी हैं क्योंकि केवल उन्हें ही वेदान्त की वास्तविक अनुभूति हो सकती है।

प्रश्न ६-- जिन लोगों में ऐसी योग्यता नहीं है क्या उनके उपदेश से भी किसी अंश में लाभ हो सकता है ?

उत्तर ६-- सुन्दर सुस्वादु वस्तुओं के सरस वर्णनों से भूखे मनुष्य का पेट नहीं भरा जा करता। वेदान्त की अनुभूति ही सन्तोष प्रदान कर सकती है। इसके अतिरिक्त बिना अध्ययन की उत्कण्ठा के श्रवण का भी कोई प्रभाव नहीं होता। जब तक शिक्षक को चित्तवृत्तियों से, वासनाओं से विराग नहीं होगा उसका उपदेश तोते की रटन्त जैसा होगा। जो लोग जिज्ञासा के बिना तथा किसी लाभ प्राप्त करने की इच्छा के बिना सुनने आते हैं वे केवल एक प्रकार का प्रदर्शन करते हैं।

प्रश्न ७-- बाबा ! आप कहते हैं कि हृदय की पवित्रता, मन की निर्मलता, और सर्वान्तर्यामी, सर्वोपरि परमात्माका ज्ञान आवश्यक है तब फिर पंचभूतात्मक शरीर के द्वारा की गई साधना का क्या लाभ है। क्या केवल स्वस्वरूप का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं होगा ?

उत्तर ७-- भले आदमी क्या पतवार की अनिवार्यता के कारण यह कहा जा सकता है कि नाव की आवश्यकता नहीं। केवल पतवार की सहायता से ही नदी कैसे पार की जा सकती है ? ध्यान रखो उस प्रभु ने शरीर रूपी नौका तुम्हें संसार सागर से पार होने के लिये ही दी है और चित्त उसमें प्रमुख वस्तु है। वेदान्त में सर्वप्रथम पग यही है। स्वस्वरूप ज्ञान पतवार है किन्तु केवल वही पर्याप्त नहीं है। शारीरिक अभ्यास और संयम भी आवश्यक ही है। सूक्ष्म एवं नित्य स्थिति प्राप्त करने के लिये संयमित शरीर परमावश्यक है।

प्रश्न ८– एक दूसरा सन्देह मेरे मन में आया है स्वामी। शारीरिक साधना के सम्बन्ध में बातचीत करते हुए क्या मैं पूछ सकता हूँ कि ब्रह्म विद्या के क्षेत्र में क्या नर और नारी का भी कोई भेद है।

उत्तर ८– पुत्र! इस नौका में ऐसा कोई भेद नहीं है। ब्रह्मविद्या और चित्तशुद्धि दोनों किसी प्रकार भी यौन स्थिति पर आधारित नहीं है प्रत्येक रोगी को रोगनाशक औषधि खाने का अधिकार है। इसी प्रकार जो भी भवरोग के रोगी हैं उन्हें ब्रह्मविद्या रूपी भवरोग नाशक औषधि विशेष के प्रयोग करने का अधिकार है। यह सम्भव है कि प्रत्येक रोगी को वह औषधि उपलब्ध न हो सके किन्तु आप यह नहीं कह सकते कि किसी विशेष व्यक्ति को उसे पाने का अधिकार नहीं।

प्रश्न ९– स्वामिन्! कुछ वेदान्ती ऐसा क्यों कहते हैं कि स्त्रियों को ब्रह्म विद्या सीखने और ब्रह्म साधन करने का अधिकर नहीं है। इसका तात्पर्य यह जान पड़ता है कि सभी नौकायें एक सी नहीं हैं?

उत्तर ९– पुत्र! जैसा मैंने अभी कहा है कि दोनों को समान अधिकार है। दोनों को वे सब साधन और नियम पालन करने होंगे जिनसे औषधि शरीर पर प्रभाव कर सके। ब्रह्म भावना अर्थात् गम्भीर आत्मचिन्तन वह औषधि है, इसके साथ साथ ज्ञान और वैराग्य का कठोरता से पालन करना आवश्यक है। नारियां इस कठोर अनुशासन का पुरुषों की भाँति पालन करने में असमर्थ होती हैं क्योंकि वे दुर्बल होती हैं। सम्भवतः इस दुर्बलता के ही कारण नारियों को ब्रह्मविद्या का अधिकारी नहीं बताया जाता। तथापि पुरुष हो या स्त्री जो भी इन कठोर नियमों और प्रतिबन्धों का यथावत पालन कर सकता है मेरी सम्मति में उसे ब्रह्म विद्या रूपी औषधि के उपयोग का पूरा अधिकार प्राप्त है।

दशम् खण्ड

प्रश्न १-- आपने कठोर अनुशासन की चर्चा की है। पुरुष को भी इनका पालन करना चाहिये अथवा नहीं ?

उत्तर १-- हां, वे भी तो रक्त, माँस, अस्थि और मज्जा ही हैं। उन्हें भी रोग लगा हुआ है। प्रत्येक वह प्राणी जिसे जन्म-मरण के चक्र की व्याधि लगी हुई है, औषधि का अधिकारी है। जो कोई इस चिकित्सा में अपनी सहायता स्वयं करना चाहता है उसे भी इस अनुशासन का पालन करना ही होगा। पुरुष या नारी जो भी इस संयम (परहेज) का पालन नहीं करेगा, इसकी उपेक्षा करेगा वह रोग से मुक्त नहीं हो सकता। पुरुष यह नहीं कह सकता कि वह इससे मुक्त है। उन्हें दृढ़तापूर्वक इस संयम का पालन करना होगा। यदि उन्हें ब्रह्मोपदेश भी प्राप्त हो चुका है तथा यदि वे शम-दम सम्पत्ति सम्पन्न भी हैं तथापि चाहे वे पुरुष हों चाहे नारी किसी प्रकार बच नहीं सकते।

प्रश्न २-- स्वामिन्! फिर क्यों कुछ विद्वानों का यह निर्णय है कि नारियों को ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर २-- नारियों को ब्रह्मविद्या प्राप्ति का अधिकारी न मानने का कोई कारण नहीं है। विष्णु-मूर्ति ने भूदेवी को गीता-गौरव का ज्ञान दिया था। गुरु गीता के माध्यम से परमेश्वर (शिव) ने पार्वती को शिक्षा दी थी। गुरु गीता में पार्वती उवाच--का यही तात्पर्य है। इसके अतिरिक्त स्वयं शिव ने पार्वती में योगशास्त्र और मन्त्रशास्त्र का प्रथम संस्कार किया। वृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णन आता है कि याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को यही ब्रह्मविद्या सिखाई थी। यह एक सुविख्यात तथ्य है। अब तुम स्वयं ही निष्कर्ष निकाल सकते हो कि स्त्रियाँ ब्रह्मविद्या की अधिकारिणी हैं अथवा नहीं।

प्रश्न ३-- कुछ ऐसे महापुरुष भी हैं जिनका मत है कि संन्यास और ब्रह्मचर्य का पालन नारियों के लिये उचित नहीं है। क्या यह सत्य है ? क्या वेदों में ऐसा प्रतिबन्ध है ?

उत्तर ३-- वेद के दो विभाग हैं। कर्म-काण्ड और ज्ञान-काण्ड। कर्म-काण्ड--प्रारम्भिक साधकों के लिए है। जिनकी बुद्धि अभी विकसित

नहीं हो पाई है। ज्ञानकाण्ड सुविकसित बुद्धि वालों एवं साधना सम्पन्न व्यक्तियों के लिये है। इस सम्बन्ध में पुरुष और नारी का कोई उल्लेख नहीं है प्रारम्भिक साधक संसारी होता है, वह ज्ञानकाण्ड के आत्म विषयक अमर सन्देश को कैसे समझ सकता है? वृहदारण्यक में गार्गी और मैत्रेयी का वर्णन आता है ब्रह्मचर्य और संन्यास के तेज से परिपूर्ण थीं। महाभारत में भी शुभयोगिनी और अन्य नारियों का वर्णन आता है जो पूर्ण योग्यता सम्पन्न आदर्श महिलायें मानी जाती हैं।

प्रश्न ४-- किन्तु, क्या गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी नारी ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकती है?

उत्तर ४-- क्यों नहीं। मदालसा तथा अन्य नारियों ने गृहस्थ आश्रम में ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया। योग वशिष्ठ और पुराणों में तुमने सुना होगा कि किस प्रकार उन्होंने महान पवित्रता अर्थात् ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया। क्या उपनिषद् कात्यायनी, सुलभा-सारंगी, विश्ववेदा और अन्य नारियों के सम्बन्ध में यह वर्णन नहीं करते कि उन्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त था।

प्रश्न ५-- स्वामिन् क्या कोई ऐसी नारी है जिसने गृहस्थ आश्रम में रहकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है। और क्या कोई ऐसी है जिसने संन्यास आश्रम में ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया। क्या कोई ऐसी भी महिला हैं जिसने वानप्रस्थ आश्रम में और क्या किसी ने ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया?

उत्तर ५-- ऐसा मत सोचो कि इन चारों आश्रमों में पृथक-पृथक में किसी भी नारी ने ज्ञान नहीं प्राप्त किया। चूडाला ने गृहस्थ आश्रम में ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया। सुलभा योगिनी ने संन्यास आश्रम में, मैत्रेयी ने वान-प्रस्थ आश्रम में और गार्गी में ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया। भारत में अन्य भी ऐसी महान नारियाँ हुई हैं जिन्हें यह महत्ता प्राप्त हुई है। यहाँ तक कि आज भी इस वर्ग की कई नारियाँ हैं। आपके प्रश्न के उत्तर में मैंने केवल कुछ नाम प्रस्तुत किये हैं अतः निराश होने की आवश्यकता नहीं।

एकादश खण्ड

प्रश्न १-- जब इतने उदाहरण नारियों द्वारा ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि के प्राप्त है तब फिर कुछ लोग इसका विरोध क्यों करते हैं और नारियों पर प्रतिबन्ध क्यों लगाते हैं।

उत्तर १-- नारियों को ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के अधिकार से वंचित करना नितान्त मूर्खता है। तथापि लौकिक जीवन में उनके लिए कुछ प्रतिबन्ध माननीय हैं। वे प्रतिबन्ध केवल धर्म के हित तथा लोक कल्याण की दृष्टि से निर्धारित किये हैं। चरित्र के उत्थान तथा सामाजिक स्वास्थ्य की दृष्टि से संसार में स्त्रियों द्वारा उन प्रतिबन्धों का पालन किया ही जाना चाहिए। उनमें कुछ नैसर्गिक दुर्बलता होती है और साथ ही वे अनुशासन के एक निर्धारित स्तर को पालन करने में असमर्थ भी होती हैं इसी कारण उन्हें प्रतिबन्धित किया गया है। यह कोई आधारभूत अक्षमता नहीं है। वे विद्वान् और पण्डित भी जो कि ब्रह्मज्ञानी हैं और शास्त्रों के ज्ञाता हैं किस लिये नारी देवी सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती की उपासना करते हैं। साधारण लोक व्यवहार में भी नारियों को लक्ष्मी आदि नामों से सम्बन्धित किया जाता है। तुम सदा कहते हो माता-पिता, गौरी-शंकर, लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधा-कृष्ण आदि। पहले नारी नाम आता है फिर पुरुष का नाम। इसी से तुम स्वयं अनुमान लगा सकते हो कि यहाँ नारी को कितना सम्मान प्राप्त है।

प्रश्न २-- नर नारी के भेद को आप अनुचित मानते हैं यह मिथ्याज्ञान है अथवा आत्मज्ञान।

उत्तर २-- प्रिय मित्र आत्मा में ऐसा कोई भेद नहीं है वह तो नित्य प्रबुद्ध, शुद्ध और स्वप्रकाशित है अतः यह भेद मिथ्याज्ञान ही हो सकता है, आत्मज्ञान कदापि नहीं हो सकता। यह भेद तो उपाधि पर आधारित है। आत्म ज्ञान न पुरुष है न नारी न नपुन्सक। यह वाह्य रूप ही भ्रम का कारण है और नामधारी है।

प्रश्न ३-- स्वामिन् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों में कौन-सा अधिक महत्वपूर्ण है?

उत्तर ३-- जिस प्रकार समस्त प्राणधारी जीवों का आधार प्राणवायु है उसी प्रकार सारे आश्रमों का आधार गृहस्थ आश्रम है। यही आश्रम शेष सबको अन्न-जल प्रदान करता है और उनका पालन करता है। यही आश्रम वेदविद्या की प्रगति करता है, यही पुराणों का रक्षक है, अतः यही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। श्रुतियों में नारद परिब्राजकोपनिषद् में और मनुधर्मशास्त्र में यह घोषित किया गया है कि जो गृहस्थ अपने आश्रम धर्म का यथावत् पालन करता है वह सर्वोपरि सम्मान का अधिकारी है।

प्रश्न ४– किन्तु स्वामी कुछ लोग तो यह कहते हैं कि संन्यासी गृहस्थी से अधिक सम्माननीय होता है। क्या यह सत्य है। कृपया स्पष्ट कीजिये।

उत्तर ४– चाहे कोई भी आश्रम हो यदि व्यक्ति अपने आश्रम धर्म का यथावत् पालन और अभ्यास करता है और दृढ़तापूर्वक मुक्ति की कामना करता है तो वह निःसन्देह मुक्ति प्राप्त कर सकता है। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये ये कोई विशेष आश्रम आवश्यक नहीं है। सभी आश्रम मुक्ति प्रदान करने में समर्थ हैं। इनमें कोई उच्च और निम्न नहीं है। केवल व्यक्ति का चरित्र और व्यवहार ही उन्हें उच्च और नीच बनाता है।

प्रश्न ५– स्वामिन्! ऐसा कहते हैं कि गृहस्थ आश्रम बन्धन का कारण है जबकि ब्रह्मचर्य और संन्यास मुक्ति का कारण है। यह विचार किस भाँति उत्पन्न होता है।

उत्तर ५-- मैं इससे सहमत नहीं हूँ। जो अपनी आजीविका नियमित साधनों से कमाता है, जो अपने अतिथि का सत्कार करता है और अपने सहयोगियों को संतुष्ट रखता है ऐसा व्यक्ति भी शास्त्रज्ञों और आत्मज्ञानियों की ही भाँति मुक्ति प्राप्त करता है। केवल ब्रह्मचारी या संन्यासी बनकर ही कोई इस जन्म और मरण के सागर के पार नहीं जा सकता। उच्च तप, त्याग, साधुत्व, महान विद्वता किसी से कुछ भी सहायता नहीं मिल सकेगी जब तक कि सत्यता एवं दृढ़तापूर्वक स्वकर्म सम्पादन में निष्ठा नहीं होगी। वेदादि का तथा

गीता का अध्ययन और नियमित एवं संयमित आध्यात्मिक जीवन तथा निरंतर जप और ध्यान से ही मोक्ष का मार्ग प्राप्त होता है।

प्रश्न ६-- इन चारों आश्रमों में से प्रत्येक में मनुष्य में किन-किन योग्यताओं का होना आवश्यक है जिससे कि वे सुरक्षित रह सकें ?

उत्तर ६-- धर्म की आधारभूत दस योग्यतायें अथवा लक्षण हैं--दया, आस्तेय, धी, विद्या, सत्य, इंद्रियनिग्रह, शौच, क्षमा, धृति, अक्रोध। ये दस लक्षण प्रत्येक व्यक्ति में आवश्यक रूप से होने चाहियें चाहे उनका कोई भी आश्रम हो। ये तुम्हारी साक्षी के लिये पर्याप्त है चाहे तुम कहीं भी किसी भी स्थिति में हो और यदि किसी में ये लक्षण नहीं हैं वह व्यक्ति चाहे जिस आश्रम में हो उसका जीवन व्यर्थ है। जीवन का नित्य कर्म अनिवार्य वस्तु है और उसके नित्य के व्यवहार में ये दश लक्षण व्यक्त होने ही चाहियें। अर्जुन के प्रश्न में कृष्ण ने यही उपदेश दिया है।

द्वादश खण्ड

प्रश्न १-- स्वामी आपने बताया कि यही प्रश्न (धर्म के दस लक्षणों सहित नित्य कर्म के महत्व के विषय में) अर्जुन द्वारा कृष्ण से पूछा गया था। श्रीकृष्ण ने इसका क्या उत्तर दिया ?

उत्तर १-- कृष्ण ने कहा मुक्ति का जो सर्वोत्तम पथ सांख्य योगियों द्वारा प्राप्त किया जाता है और जो ज्ञान योग में पूर्ण होता है वह पद उन्हें भी प्राप्त हो जाता है जो निष्काम कर्मयोगी होते हैं। दोनों को एक ही फल प्राप्त होता है। इसी को सत्य जानो। इस क्षेत्र में गृहस्थ और संन्यासी का कोई भेद नहीं होता। केवल सतत् अभ्यास और सद् प्रयत्न की आवश्यकता होती है। केवल ब्रह्मतत्व के ध्यान के अतिरिक्त और सभी कुछ त्यागना होता है। जो इसे प्राप्त कर लेता है उसे किसी प्रकार का शोक नहीं होता क्योंकि अज्ञान की छाया शेष नहीं रहती।

वह बुद्धिमान व्यक्ति जो इस स्थिति तक पहुँच जाता है वह कभी क्षणिक और भ्रांत तत्वों से धोखा नहीं खाता। यहाँ तक कि अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में भी यदि किसी को यह ज्ञानाभूति बनी रहती है तो वह निश्चित से जीवन और मरण की परम्परा से मुक्त हो जाता है।

प्रश्न २– तब फिर ये वर्णजाति आदि क्यों निर्मित किये गये।

उत्तर २– इन सबका सम्बन्ध मनुष्य के भौतिक स्वरूप से है। इनके द्वारा आत्मस्वरूप पर किंचित भी प्रभाव नहीं पड़ता। ये केवल भौतिक आकार को ही व्यक्त करते हैं। वस्तुतः बुद्धि, चित्त, मन और अन्तःकरण सब भौतिक आकार के अन्तर्गत ही है। इनको सुशिक्षित एवं सुव्यवस्थित किये बिना आत्मतत्व को नहीं जाना जा सकता। जाति, मत, धर्म, आदि सब मनुष्य की भावनाओं और वासनाओं को सुव्यवस्थित और संयमित करने में सहयोगी होते हैं। यही कारण है कि बुद्धिमानों ने इन सबको सम्मानपूर्वक स्वीकार किया है। आत्मा सत्‌चित और आनन्द है। यही इसका स्वभाव है। यदि किसी प्रकार इसका कहीं प्रकटीकरण भी होता है तो वह शुद्ध एवं निर्मल चित्त, मन और बुद्धि द्वारा उसकी अनुभूति मात्र ही है। चाहे किसी भी वर्ण और आश्रम से सम्बन्धित व्यक्ति हो यदि उसका मन, बुद्धि और आत्मा पवित्र है तो वह मोक्ष का अधिकारी हो सकता है। यही शास्त्रों का कथन है। मनुष्य चाहे एकान्त वन में ही क्यों न हो यदि उसमें राग और द्वेष का भाव बना हुआ है तो उसे पाप ही प्राप्त होगा। मनुष्य अपने परिवार के बीच में गृहस्थी जीवन बिताता हुआ भी सच्चा तपस्वी कहलाया जा सकता है यदि उसने अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है। कर्म में लीन व्यक्ति भी ज्ञानी हो सकता है। जो विरागी है उसका स्थान ही मुनि आश्रम है। मनुष्य अपनी सन्तति, अपने कर्म, सम्पत्ति और यज्ञ योगादि नैमित्तिक कर्मों तथा धार्मिक कृत्यों द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है। मुक्ति के लिये सबसे बड़ी आवश्यकता दोषों से स्वतंत्र होने तथा संग (मोह) त्याग की

असक्ति ही बन्धन है।

प्रश्न ३-- स्वामी आप कहते हैं कि किसी व्यक्ति के लिये एक कर्म अनिवार्य है दूसरे के लिये कोई दूसरा कर्म है। यह कैसे जानें कि किसके लिये कौन-सा कर्म आवश्यक है ? इसका क्या प्रमाण है।

उत्तर ३-- शास्त्र प्रमाण है। स्वयं मनुस्मृति में कहा गया है कि वर्ण और आश्रम भौतिक मल विकार के दूर करने के साधन हैं इनका उच्चतम लक्ष्य प्राप्ति अथवा अप्राप्ति के मार्ग में प्रभाव नहीं पड़ता।

प्रश्न ४-- यदि ऐसा है तो वर्ण आश्रम का यह सारा बखेड़ा क्यो है। और इतने नियमों और विधानों की किस लिए आवश्यकता है।

उत्तर ४-- जब तक आप आसक्ति और राग से नहीं छूटते हैं तब तक इनकी आवश्यकता है और तब तक नियम और विधान के एक-एक अक्षर के पालन करने की आवश्कयता है। जब तक रोग है औषधि का उपयोग होना ही चाहिये। हर रोग की एक अलग विशेष औषधि होती है, साथ ही साथ पथ्य और संयम भी सबका पृथक-पृथक ही होता है। रोग मुक्त होने पर ही किसी प्रीतिभोज में सम्मिलित हुआ जा सकता है। यदि निरोगी और रोगी दोनों ही एक सा प्रीतिभोज चाहेंगे तो दुर्भाग्य पूर्ण परिणाम हो सकता है। भवरोग से पीड़ितों के लिये वर्ण आश्रम ही औषधि है। रोग एक रोग है और कठोर संयम से ही समाप्त हो सकता है। जब तक तुम निरोगी नहीं हो जाते औषधि छोड़ी नहीं जा सकती। यही वेदान्त का वास्तविक तात्पर्य है जो इसे जानता है वह चाहे जिस आश्रम में हो मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न ५-- स्वामिन् ! क्या किसी महान आत्मा ने गृहस्थी जीवन में रहते हुए मुक्ति प्राप्त की है ?

उत्तर ५-- जनक, अश्वपति, दिलीप आदि उन महान् आत्माओं के उदाहरण है जिन्होंने गृहस्थ आश्रम में रहते हुए मोक्ष प्राप्त किया।

प्रश्न ६-- स्वामी क्या श्रुति का यह सिद्धान्त पूर्णतः पालन करना आवश्यक नहीं है कि प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करना चाहिए। फिर गृहस्थ

में प्रविष्ट होकर वानप्रस्थ के संयम नियम का पालन करता हुआ संन्यास की ओर अग्रसर हो अथवा अन्यं आश्रमों का पालन किये बिना ही संन्यास धारण किया जा सकता है?

उत्तर ६– हां, जब व्यक्ति दृश्यमान जगत के राग से रहित अनासक्त हो जाय वह संन्यास ले सकता है। ऐसा अवसर प्राप्त हुए बिना पतन अवश्य है, चाहे आप किसी भी स्थिति और किसी भी आश्रम में हों। जब आप पूर्ण त्याग कर चुकें आप उसी क्षण संन्यास धारण कर लें। ऐसा कोई दुर्लभ नियम नहीं है कि आप तीनों आश्रमों में से होकर ही संन्यास की ओर जायें। श्रुति का भी विधान है कि ऐसी आत्मा अन्य सब आश्रमों की साधन सम्पत्ति से सम्पन्न होती हैं। ऐसी आत्मा के जन्मान्तर से संचित प्रवृत्तियों के विनाशक संस्कार पूर्व जन्म में ही नष्ट हो जाते हैं और प्रगतिशील एवं उन्नत संस्कार उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रश्न ७– हमें यह कैसे ज्ञात होगा कि कैसे परिवर्तन गत जन्म में प्राप्त हो चुके हैं। क्या ऐसा कोई चिन्ह होता है जिससे ज्ञात हो सके कि अमुक-अमुक आश्रम का त्याग किया जा सकता है। यदि हो तो कृपया बताइये।

उत्तर ७– किन्हीं तीन आश्रमों की पूर्णता का चिन्ह व्यक्ति विशेष की उन आश्रम व धर्मों में अनाशक्ति से बढ़कर और क्या हो सकता है। यदि गत जन्म में ही वैराग्य का विकास हो चुका है, तो इच्छा की समाप्ति ही हो जायेगी। आत्मा के सत्य स्वरूप का उदय हो गया है इस तथ्य का बोध हो जाने पर मनुष्य प्रारम्भिक तीन आश्रमों से मुक्त हो जाता है और जब विराग व्यक्त हो जाता है, मनुष्य सांसारिक जीवन का त्याग कर सकता है भले ही उसे कुछ आश्रमों की सीढ़ियाँ बीच में उल्लंघन करके जाना पड़े। श्रुति इस प्रक्रिया का समर्थन करती है। किन्तु संन्यास की दीक्षा देने वाले व्यक्ति को भली-भाँति परख कर यह निश्चय कर लेना चाहिये कि जिस व्यक्ति को दीक्षा दे रहा है वह लौकिक वासनाओं से मुक्त है एवं वैराग्य सम्पन्न है। संन्यास की

दीक्षा केवल उसी व्यक्ति को दी जाय जिसका मन उद्विग्न न हो और वृत्तियाँ शान्त हों। ऐसा ही व्यक्ति वैराग्यवान कहा जाता सकता है। संन्यासी होने के अभ्यार्थी को स्वयं आत्मपरीक्षण द्वारा यह जान लेना चाहिये कि उसका अन्तःचेतन गुणहीन, निष्क्रिय और प्रगतिशील हैं अथवा नहीं। यदि वह इस प्रकार मुक्त नहीं है तो वह संन्यास की प्रतिज्ञा को भग्न कर देगा और बहिष्कृत हो जायगा। सम्भव है वह इस जीवन के (संन्यासी जीवन के) भार को सहन करने में असमर्थ सिद्ध हो और उसका नितान्त कष्टकारक अन्त हो।

प्रश्न ८-- क्या संन्यास एक ही प्रकार का होता है? अथवा उसके कई रूप होते हैं कृपया बताइये।

उत्तर ८-- तीन प्रकार के संन्यास होते हैं। उनके नाम हैं देहसंन्यास, मनोसंन्यास और आत्मसंन्यास।

प्रश्न ९-- देह संन्यास का क्या तात्पर्य है?

उत्तर ९-- बाह्य शरीर से व्यक्त होने वाला संन्यास। ऐसा संन्यासी काषाय वस्त्र धारण करता है, नाम और रूप धारण करता है किन्तु उसे आत्मबोध नहीं होता। वह भौतिक वासनाओं में लिप्त इधर-उधर घूमता है। अपने सम्पूर्ण उद्देश्यों और लक्ष्यों में सामान्य जन ही होता है।

प्रश्न १०-- मनोसंन्यास?

प्रश्न १०-- मनोसन्यास में समस्त अभिलाषाओं और इच्छाओं का तथा निश्चयों का त्याग हो जाता है। उसका मन कठोर अनुशासन में होता है। वह विकारों और उत्तेजनाओं के संकेतों पर नहीं चलता वह पूर्ण शान्त और संयत होता है।

प्रश्न ११-- आपने तीसरा आत्म संन्यास बताया था?

उत्तर ११-- हाँ! आत्म संन्यासी समस्त अनात्म तत्वों से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है। क्योंकि वह वास्तविक सत्य के चिन्तन में लीन रहता है। अहंब्रह्मस्मि--वह अपने को आत्मा अनुभव करने में निरन्तर तत्पर एवं दृढ़ एवं सावधान रहता है। वह अखण्डानन्द मग्न रहता है, यही अमृत संन्यास भी कहलाता है। घने अन्धकार को केवल सूर्य का

जाज्वल्यमान प्रकाश नष्ट कर सकता है इसी प्रकार आत्म संन्यास के दिव्य तेज के बिना अज्ञान नष्ट नहीं हो सकता। जब तक हृदय का आवरण छिन्न-भिन्न नहीं होता तब तक अज्ञान का अन्धकार समाप्त नहीं हो सकता।

प्रश्न १२-- ये संन्यास किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं और इस बात का क्या लक्षण है कि वे प्राप्त हो गये है ?

उत्तर १२-- नित्य और अनित्य के भेद को जानकर देहसंन्यास प्राप्त किया जा सकता है। मन, वाणी और चित्त की चंचलता को त्यागकर मनोसंन्यास धारण किया जा सकता है। वेदान्तिक विचारों से परिपूर्ण होकर आत्मसंन्यास प्राप्त किया जा सकता है। जब ये शैक्षिक प्रभाव प्रबल हो जाते हैं और इन गुणों में भली-भाँति स्थिति हो जाती है तभी तुम मुक्ति प्राप्त कर सकते हो। इन सबके सामूहिक प्रभाव से ही मुक्ति होती है।

प्रश्न १३-- अपने जीवन को सम्मानपूर्ण ढंग से बिताते हुए इनमें से कौन वास्तव में सौभाग्यशाली कहे जाते हैं ?

उत्तर १३-- उसी का जीवन धन्य हैं और वही परम सौभाग्यशाली है जो पूर्ण शान्ति और आनन्द के साथ मधुमक्खी की भाँति विभिन्न पुष्पों का मधु संचित करता है, जो आत्मानन्द के अमृत का निरन्तर मनोयोग पूर्वक पान करता रहता है और जो इस जगत् को एक दृश्यमात्र मानकर इसकी उपेक्षा करता है वही महान् है।

प्रश्न १४-- स्वामिन्! महापुरुषों द्वारा जिसे नित्य, सत्य, निर्मल एवं शान्ति प्राप्ति कहा गया है, वह क्या है। यह सत्य, अविनश्वरता, पवित्रता, और समता किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है।

उत्तर १४-- जैसा कि मैंने पहिले बताया है वही मानव सत्य, नित्य और शान्ति को प्राप्त करता है जो इस दृश्य में लिप्त नहीं होता और अपने आत्मानन्द में निरन्तर लीन रहता है यदि उसे इसमें से एक भी प्राप्त हो जाय तो पर्याप्त है क्योंकि उसी में शेष सब समन्वित रहते हैं।

त्रयोदश खण्ड

प्रश्न १– क्या कोई ऐसा मन्त्र अथवा जप है जो हमें आपके द्वारा इगिंत शान्त स्थिति प्राप्त करा सकता है। यदि मन्त्र है तो कृपया बतलाइये कि उनमें सबसे महत्वपूर्ण कौन-सा है ?

उत्तर १– प्रत्येक स्थिति के मानव को मन्त्र और जप की आवश्यकता है। मन्त्र क्या है। 'म' का अर्थ है मनन और 'त्र' का अर्थ त्रास (रक्षा) अतः मंत्र का तात्पर्य है वह तत्व जो साधना में तुम्हारी सुरक्षा कर सके। मंत्र तुम्हें इस जग जीवन के बन्धन में फंसने से बचायेगा जो कि दुःख, शोक और मृत्यु से परिपूर्ण है। सभी मंत्रों में प्रणव, सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ है। यह मंत्रों का शीर्ष और मुकुट है।

प्रश्न २– यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने इष्ट देवता का नाम अपने नियम और ज्ञान के अनुसार जपे तो मैं समझता हूँ यह भी कुछ अनुचित नहीं है। अथवा अनुचित है !

उत्तर २– आपका तात्पर्य यह है कि चाहे कोई व्यक्ति कितना ही मूर्ख और अज्ञानी हो वह प्रभु को पुकार सकता है। ठीक है, किन्तु यदि जप किया जाने वाला प्रणव सहित नाम जप करता है तो वह निश्चित रूप से अधिक लाभकारी होगा। जिस प्रकार सूर्य की किरणों से सागर का जल आकाश में पहुंचता है और तब वह वर्षा के रूप में जल बन कर गिरता है। वर्षा का सर सरिताओं में प्रवाहित होता हुआ पुनः सागर की ओर जाकर सागर का जल बन जाता है इसी प्रकार विविध विधि-विधानों द्वारा जपे जाने पर प्रत्येक ध्वनि और मंत्र प्रारम्भ में प्रणव ही हैं और विविध विधि विधानों द्वारा जपे जाने पर पुनः अपने मूलस्रोत प्रणव में ही लीन हो जाते है।

प्रश्न ३– स्वामिन् कुछ गुरुजन कहते हैं कि जिस मन्त्र में जितने ही अधिक बीज अक्षर होते हैं वह उतना ही प्रभावशाली होता है, अतः जिन मंत्रों में कम बीज अक्षर होते हैं उनकी अपेक्षा अधिक बीज अक्षर वाले मंत्र श्रेष्ठ होते हैं।

उत्तर ३– मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ कि बीज अक्षरों की गणना ही समाप्त हो जायेगी तब ध्यान में केन्द्रित ही नहीं हुआ जा सकेगा। साधक

यदि पंचाक्षरी या अष्टाक्षरी मन्त्रों के प्रारम्भ में प्रवण लगाकर जाप करे तो उससे भी महान् लाभ होगा । जब वे कुछ मार्ग पर चल लें तब वे चाहे तो अक्षरों को त्याग कर उनके द्वारा व्यक्त देवता के स्वरूप का ही ध्यान कर सकते हैं क्योंकि श्रुति का कथन है–निश्शब्दो ब्रह्मनुच्यते ब्रह्म रहित, ध्वनि रहित है ।

प्रश्न ४– शब्द ब्रह्म कैसे हो सकता है ?

उत्तर ४– श्रुतियों द्वारा व्यक्त किया गया है कि यह दृश्य जगत प्रकृति माया है । जो इस सम्पूर्ण माया को अपने वश में कर लेता है वही ईश्वर है । अतः इस समस्त सृष्टि को अपने वश में लाने का प्रयत्न करो और ईश्वर बन जाओ । जब तुम अपने सम्बन्ध में इस भौतिक जगत भावना को समाप्त कर देने की स्थिति में आ जाते हो तभी वह स्थिति होती है जिसे ब्रह्म प्राप्ति कहते हैं । जब तक संसार भावना नहीं समाप्त होती ब्रह्म को प्राप्त नहीं किया जा सकता । निश्चित ही है । जैसे सर्प पुरानी केंचुली उतार कर नई धारण करता है । साधक भी पुराना चोला बदल कर अपने उसी इष्ट देवता का रूप ले लेता है जिसके मंत्र जाप के द्वारा उसने ध्यान किया है ।

प्रश्न ५– स्वामिन् ! क्षमा कीजिए मैं इसे ग्रहण नहीं कर सका । कृपया एक और उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट कीजिये ।

उत्तर ५– आपने अण्डा देखा है न ? जब पक्षी कुछ समय के लिये अण्डे पर बैठता है उसके अन्दर शावक की वृद्धि होती है और जब अण्डे का ऊपरी भाग फट जाता है वह शावक अपने वास्तविक आकार में बाहर आ जाता है । इसी प्रकार जब साधक अपने पवित्र भाव से मन्त्र और अर्थ पर ध्यान केन्द्रित करता है और निरन्तर अपने मस्तिष्क में उसका मनन चिन्तन करता है तो उसके मस्तिष्क में देवता की कल्पना जाग्रत हो जाती है और अज्ञान का बाह्यकोष फट जाता है । वह अपने दैवी तेज से दीप्त हो जाता है जो उसने अपनी चेतन अवस्था में निर्माण किया था ।

प्रश्न ६– यह कहा गया है कि सारी सृष्टि प्रणव से ही उत्पन्न होती है और अन्त

में प्रणव में ही विलीन हो जाती है तब कुछ लोग ऐसा क्यों कहते हैं कि सब कोई प्रणव का उच्चारण नहीं कर सकते।

उत्तर ६– प्रकृति क्या है? पाँच तत्वों का मिश्रण ही तो है। और प्रणव इन पाँचों का बीज है अतः यह प्रकृति का भी प्राण है। शिला खण्डों पर पतित होते हुए जल का गर्जन, तटवर्ती उद्गम भूमि पर वीथियों के प्रहार का शब्द दोनों ही निरन्तर प्रणव का उच्चारण हैं। श्वांस के आवागमन की ध्वनि स्वयं प्रणव ही है ना? पालकी को अपने कन्धों पर ढोने वाले कहारों की हैइया-हैइया भी प्रणव का ही पाठ है, भारवाही श्रमिकों की हुंकार और सरोवरों के तट पर वस्त्र प्रक्षालन करने वालों की शियो-शियो ध्वनि सब प्रणव का ही रूप है। भले ही ये लोग इस रहस्य को जानते अथवा न जानते हों। इस प्रणव के आन्तरिक महत्व को समझ इसका जाप करो और तुम सांसारिक चिन्ताओं के भार से मुक्त हो जाओगे। श्वांस प्रश्वास से उच्चरित होने वाला प्रणव का घोष सर्व शोक से सुरक्षा करता है। यह कहने में कोई सार नहीं कि कोई प्रणव का जाप कर सकता है कोई नहीं। जिनमें श्वांस क्रिया का अभाव है वे भले ही इसके अधिकारी न हों किन्तु जो श्वांस लेते हैं वे प्राणी तो श्वांस-प्रश्वांस के रूप में प्रणव का निरन्तर उच्चारण करते ही हैं फिर इसके उच्चारण के अधिकार से किसी को वंचित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब अर्जुन ने पूछा कि मृत्यु के समय कोई प्रभु का स्मरण किस प्रकार करें? जानते हो तब कृष्ण ने क्या उत्तर दिया। उन्होंने कहा ऐसे अवसर पर मनुष्य को ऊं कार ध्यान करना चाहिये क्योंकि प्रणव और प्रभु में अन्तर नहीं है। ऐसा ही भक्त अपने उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करता है। अतः इस महामंत्र प्रणव के जाप का सबको अधिकार है।

प्रश्न ७– प्रणव की उपासना द्वारा लक्ष्य तक किस प्रकार पहुँचा जा सकता है? साधक किस प्रकार अपने ध्येय-इष्ट में परिवर्तित हो सकता है; कृपया स्पष्ट रूप से समझाइये कि यह अनुपम महा मंत्र किस प्रकार सहायक सिद्ध होता है?

उत्तर ७-- अति उत्तम। प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और पारब्रह्म लक्ष्य है। अतः एक धनुर्धारी के अभ्यास की भाँति साधक को उन सब वस्तुओं से प्रभावित नहीं होना चाहिए जो मानसिक उत्तेजना उत्पन्न करती हैं उसे केवल अपने लक्ष्य पर ही ध्यान को केन्द्रित करना चाहिए तभी धनुर्धर अपने लक्ष्य से योजित होता है--अर्थात् ध्याता ध्येय में परिवर्तित हो जाताा है। कैवल्योपनिषद्, मन्डूकोपनिषद् और अनेकों श्रुतियों में प्रणव की अनेक प्रकार से प्रशंसा की गई है। अतः यह मंत्र जो कि मानव का मुक्तिदाता है--सभी के द्वारा जपा जा सकता है और सभी इसका ध्यान कर सकते हैं। प्रणव उपासना का सभी अभ्यास कर सकते हैं। इस विषय में किसी प्रकार की शंका नहीं होनी चाहिये।

चतुर्दश खण्ड

प्रश्न १-- जैसा आप कहते हैं क्या उस प्रकार मनुष्य आत्मा का अनुभव कर सकता है और पंच भूतात्मक इस भौतिक शरीर से ही प्रणव में लीन हो सकता है? क्या आत्मा शरीर से पृथक हो सकती है? यह सब किस प्रकार होते हैं?

उत्तर १-- मनुष्य ध्यान तथा अन्य यम नियमों का पालन करके और प्रणव मंत्र का जाप करके आत्मा को खोज सकता है और उसे शरीर से पृथक कर सकता है। यह ठीक वैसी ही क्रिया है जैसे दही से माखन लेने, सीसम से तेल लेने और धरती से जल प्राप्त करने की क्रिया होती है। माखन मथने से, तेल पेलने से और भू छेदन से जल प्राप्त होता है। बस इतना ही पर्याप्त है और इन सब क्रियाओं के द्वारा क्या होता है। आत्मा का शरीर से पृथक्करण ही तो होता है अथवा इस विश्वास का निवारण होता है कि आत्मा शरीर है अथवा पुरुष।

प्रश्न २-- स्वामिन्! विद्वानों और संतों का मत है कि जीवात्मा को ही परमात्मा

जानो और इस अनुभूति को धारण करो। **यह किस प्रकार सम्भव है?**

उत्तर २-- तुम इसे कठिन क्यों समझते हो? क्या असत्य भाषण की अपेक्षा सत्य भाषण सुगम नहीं है? जब तुम किसी असत्य को सत्य सिद्ध करने का प्रयास करते हो तभी सारी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। सत्य को स्वीकार करो। सत्य यही है कि जीवात्मा और परमात्मा एक ही है। ऐसा मान लेने पर सब सुगम हो जाता है। सर्वप्रथम इस तथ्य को जानने की कि आत्मा जीवात्मा--शरीर से सम्बन्धित नहीं है। ध्यान आदि के द्वारा यह रहस्य जाना जा सकता है। जिस प्रकार पुष्प से गन्ध, इक्षु से खाँड और शिला खण्ड से स्वर्ण भिन्न किया जा सकता है। तब निद्धियासन के द्वारा एकान्त ध्यान और समाधि आदि से जीवात्मा और परमात्मा का एकत्व देखा जा सकता है। यही तप की समाप्ति है अन्तिम निर्वाण है।

प्रश्न ३-- स्वामिन्! वस्तुतः तप है क्या?

उत्तर ३-- तप का अर्थ है इन्दियों की क्रियाशीलता की समाप्ति। मनुष्य का इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिए। किसी प्रकार की तृष्णा और अभिलाषा का चिन्ह भी शेष नहीं रहना चाहिए। यही ब्रह्म प्राप्ति का प्रयास है। इस लक्ष्य की पूर्ति की उत्कट अभिलाषा मिताहार और अल्पशयन द्वारा व्यक्त होनी चाहिये। इसका तात्पर्य तत्व की अनुभूति की व्यग्रता। ऐसा ही तप सात्विक कहलाता है।

प्रश्न ४-- बाबा। तब राजसिक तप क्या है?

उत्तर ४-- वे व्यक्ति जो अपने को भूखा रख कर तथा अन्य और भी प्रकारों से शरीर दुर्बल कर लेते हैं और इंद्रियों का निग्रह तथा कामनाओं का उन्मूलन नहीं करते वह राजसिक तप ही हैं। वे आत्मतत्व पर ध्यान केन्द्रित नहीं करते न ही उसको जानने के लिए मनन करते हैं। वे तो केवल शारीरिक यंत्रणा पर ही जोर देते हैं।

प्रश्न ५-- तब तो फिर तामसिक तप भी होता होगा।

उत्तर ५-- हाँ अवश्य ही। ईश्वर की कृपा पाने के लिये तप किया जाये फिर उनकी कृपा को साधन बनाकर साँसारिक उपभोगों को भोगा जाये

बस यही तामसिक तप है। केवल वही तप उचित है जिसके करने का लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति हो, ब्रह्म की उपलब्धि हो, परम ज्ञान की प्राप्ति हो। शास्त्रों में केवल इस प्रकार के तप की ही सराहना की गई है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी तुम्हें मार्ग से भटका देंगे। शास्त्रों में वर्णित सात्विक तप ही करने योग्य है। वही तप कहलाने योग्य है और अन्य तो तामस हैं। तप का अर्थ है गर्मी जो पापों को जला कर समस्त कर्मों को क्षार-क्षार कर दे।

प्रश्न ६-- स्वामिन् मैने शास्त्रों में पढ़ा है कि ऋषियों के आश्रमों में चिन्तामणि जैसा, रत्न, कल्पवृक्ष जैसा मनवाँछित देने वाला वृक्ष, शिरोमणि कामधेनु जैसी सब कुछ देने वाली गाय होती थी जो उनकी किसी भी इच्छा को पूर्ण कर सकती थी फिर बाबा यह ऋषिगण तप क्यों करते थे ? कृपया यह मुझे समझाइये ?

उत्तर ६-- तुम्हारा यह विचार करना ठीक है। लेकिन तुम्हें यह जानना चाहिये कि चिन्तामणि कोई मूल्यवान् पत्थर नहीं है, या कल्पवृक्ष कोई पेड़ नहीं है, कामधेनु भी कोई गाय नहीं है। यह तो तपस्या के द्वारा प्राप्त फलों के नाम हैं। यह वह शक्तियाँ हैं जो मानव को तपस्या के द्वारा स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं। जो व्यक्ति इच्छा मात्र से ही अपना इच्छित प्राप्त कर लेता है। उसे कल्पवृक्ष की सिद्धि कही जा सकती है और जब वह व्यक्ति अपनी समस्त इच्छाओं को समाप्त कर देता है तब उसको ही कामधेनु की सिद्धि कहा जाता है। चिन्तामणि सिद्धि क्या है ? यह वह स्थिति है जब तुम्हें कोई चिन्ता, कामना और मानसिक उद्वेग शेष न रहें। वह स्थिति जब क्लेश का नाम निशान भी न हो, जब चिन्ता की समाप्ति हो जाये और परमानन्द की प्राप्ति हो जाये बस वही चिन्तामणि सिद्धि है। चिन्ता को विचार, शब्दों और कर्मों से पूरी तरह समाप्त होना चाहिए।

प्रश्न ७-- कुछ लोग मानसिक तप का भी वर्णन करते हैं। उसका क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर ७-- वाणी पर (बोलने पर) नियंत्रण रखो, विचारों को शुद्ध रखो, दया का

भाव बनाये रखो, विचारों को सदा ही ब्रह्मतत्व पर केन्द्रित रखो बस तभी तुम मानसिक तप की परिधि में कहे जा सकोगे।

प्रश्न ८-- और शारीरिक तप ?

उत्तर ८-- यह भी अपने प्रकार में अच्छा है। बड़ों का, आध्यात्मिक गुरुओं का, साधुओं और सन्तों का तथा ईश्वर का सम्मान करो और उनसे अपने में विशुद्ध भाव स्थापना के लिये अनुनय करो। अहिंसा-समस्त जीवों के प्रति दयाभाव, सत्य बोलना और सरल व्यवहार करना आदि सभी शारीरिक उन्नति के कारण हैं। इनमें स्वास्थ्य तथा सभी प्रकार की उन्नति होगी। मानसिक तपस्या के द्वारा मानस की परिशुद्धि होती है। वाचा के नियंत्रण से वाणी शुद्ध होती है। और इन तीनों के करने से कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्ता मणि की उपलब्धि होती है। यह तो वे उपलब्धियाँ हैं जो तपस्या से प्राप्त की जाती हैं न कि कोई पेड़, मणि और गाय जो तपस्या के बाद मिलती हों।

प्रश्न ९-- क्या कुछ जन ऐसे भी हैं जो तपस्या में सफलता पाकर ब्रह्मतत्व और धर्मतत्व को पाने में सफल हुए हों ? मुझे उनके विषय में बताइये।

उत्तर ९-- कपिल महामुनि को ब्रह्मतत्व प्राप्त हुआ, जयमनि महा मुनिको धर्मतत्व प्राप्त हुआ, नारद ब्रह्मऋषि बन गये, भागीरथ गंगा को लाने में सफल हुए, गौतम ऋषि गोदावर को पृथ्वी पर प्रवाहित करने में सफल हुए, महर्षि बाल्मीकि को राम मंत्र की परम शक्ति का आभास हुआ और उन्होंने रामायण की रचना कर डाली, गार्गी ने ब्रह्मचर्य का पालन किया, और सुलभा ने आध्यात्मिक परम ज्ञान की उपलब्धि की यह सब कुछ तपस्या के द्वारा ही तो सम्भव हो सका था। एक के बाद दूसरा उदाहरण देने से क्या लाभ ? तपस्या के द्वारा ब्रह्मा और रुद्र के समान बना जा सकता है।

प्रश्न १०-- स्वामी ! इतनी ऊंची अवस्था को पाने के लिये क्या आप यह बतायेंगे कि उच्च वंश में उत्पन्न होना भी आवश्यक है ? अथवा उच्च, कठोर साधना ही पर्याप्त है ?

उत्तर १०-- चरित्र बिना जाति व्यर्थ ही है, वह तो फिर उस लेबिल की तरह ही

होगी जो किसी डिब्बे का प्रदर्शन पात्र है। उसमें चाहे हो कुछ भी। चरित्र को ठीक किये बिना की जाने वाली साधना अन्धे की यात्रा की तरह है जो अन्धाधुंध चलता जा रहा है। नैतिकता, सचरित्रता और सद्कर्म यह तो मूल हैं। यदि इन सबके आधार पर ही कोई व्यक्ति निर्धारित नियमों को लेकर साधना करता है तो उसकी सफलता में कोई शंका नहीं रहती। लेकिन तुम्हें एक बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये जाति और जन्म के लिये ही केवल तुम्हें अहंकार नहीं करना चाहिए। जाति के अनुसार नीति और चारित्रिक उपलब्धियाँ भी मानव को प्राप्त होती हैं और उनमें स्थित होने के लिये, उन जातीय महानताओं से लाभान्वित होने के लिये, जाति-भाव लाभदायक है और आवश्यक है। परन्तु जिसके पास पूर्व के जन्मों का अर्जित अमूल्य कोष आरक्षित है उसको जातीय भाव की महत्ता नहीं है। उन व्यक्तियों में जिन्होंने अपने पहले जन्मों से योग का अभ्यास किया है और उसको पूर्ण नहीं कर पाये हैं जन्म से ही महानता का भाव लक्षित होता है। महत्वपूर्ण बात तो नीति का प्राप्त करना है जो कि जाति के लिये बनायी जाती है। जाति को नीति से सम्बन्धित करके अपने को सक्षम और योग्य बनाओ और जीवन में उच्च स्थान प्राप्त करो। साधना के मार्ग पर कुछ दूर तक जाति और नीति सहायक होती हैं। तुम कीचड़ में से निकल कर आने के बाद अपने पैरों को धोते हो। इसी प्रकार सांसारिक रोगों के कीचड़ से मस्तिष्क को साफ करना होगा। ज्ञान के द्वारा ही मोह का बन्धन टूटेगा, उसकी अग्नि से ही जब यह बीज भुन जायेगा तो इसकी (उर्वरा) आवागमन की, जन्म मरण की, मोह जनित कर्म फल की व्याधि नष्ट हो जायेगी। फिर यह दुबारा पैदा नहीं होगा। इसलिये जिसके पास ज्ञान-कोष है वह मुक्त हो सकता है।

षष्टदश खण्ड

प्रश्न १-- पूर्वजों का कहना है कि आवागमन से छुटकारे के लिये योग आवश्यक है ? वह योग क्या है जिसके लिये उन्होंने कहा है ?

उत्तर १-- योग-शास्त्र कहता है कि कुछ आसनों के द्वारा मन की चंचलता को रोका जा सकता है और मन को पवित्र किया जा सकता है, दृढ़ विश्वास की उत्पत्ति, ज्ञानास्थापना, तथा कुण्डलनी जागरण भी इससे उत्पन्न होता है।

प्रश्न २-- यह कहा जाता है योग के कुछ भेद हैं। (अंग वे क्या हैं और उनके नाम क्या है ?

उत्तर २-- वे आठ हैं--अष्टाँग योग, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। यह उनके आठ नाम हैं।

प्रश्न ३-- क्षमा करें। यदि मुक्ति पाना है तो क्या इन सबका अभ्यास करना होगा। अथवा इसमें से किसी एक का ही अभ्यास कर लेने से लक्ष्य पूरा हो सकेगा।

उत्तर ३-- मुक्ति तो केवल प्रथम दो का ही अभ्यास करने से, इन दो में ही पूर्णता पाने से प्राप्त की जा सकती है। विश्व की रचना में यह दो ही तो मूल कारण हैं।

प्रश्न ४-- जब हम योग के सम्बन्ध में कहते हैं तो क्या हमारा अभिप्राय अष्टांग योग से ही केवल होता है अथवा अन्य प्रकार के योग भी हैं ?

उत्तर ४-- केवल यही एक योग नहीं है--यह सब चार हैं।

प्रश्न ५-- वे क्या हैं ? और उनके नाम क्या हैं ?

उत्तर ५-- उनके प्रचलित नाम हैं--मंत्रयोग, राजयोग, लययोग और हठयोग।

प्रश्न ६-- इन चारों योगों में कौन-कौन अंग हैं ?

उत्तर ६-- भोले मानव ! करोड़ो मनुष्यों को भी केवल दो ही नेत्र देखने के लिये मिले हुये हैं, इसी प्रकार समस्त योगों के लिये भी यम और नियम दो नेत्र हैं। इन दोनों के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। प्रत्येक योगी के लिये ही मनः--शुद्धि परमावश्यक है। और उसके लिये यम और नियम का पालन निर्विवाद है।

प्रश्न ७-- यम और नियम से आपका तात्पर्य क्या है ? क्या इनके भी अंग और

उप नियम आदि हैं जिनके द्वारा इनकी व्याख्या की जा सकती है ?

उत्तर ७– हाँ । इनमें से प्रत्येक के दस-दस अंग हैं । जब तुम इन सबमें स्थित हो जाओगे तभी लक्ष्य की प्राप्ति करोगे ।

प्रश्न ८– यम के अन्तर्गत आने वाले दस उपांगों का विवरण बताइये स्वामी?

उत्तर ८– अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, अर्जन, क्षमा, धृति, मिताहाराम्, शौचम् यही सब यम के अन्तर्गत आते हैं ।

प्रश्न ९– नियम के अन्तर्गत आने वाले दस उपांग कौन से हैं स्वामी ?

उत्तर ९– तप, संतोष, आस्तिक बुद्धि, दान, ईश्वर पूजा, वेदांत वाक्य श्रवण, लज्जा, मति, जप, व्रत ही वह दस उपांग हैं । मोक्ष के लिये यही आधार भूमि की तरह हैं । समस्त योगीजन इन यम और नियमों में निश्चित रूप से ही स्थिति को प्राप्त होते हैं ।

प्रश्न १०– योग आसन पर अधिक जोर देता है उसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर १०– वे आत्मज्ञानियों और योगियों को बहुत सहायक होते हैं ।

प्रश्न ११– आसन भी बहुत से होते होंगे स्वामी ?

उत्तर ११– हाँ, वे बहुत से हैं । लेकिन मुख्य हैं--सिद्धासन, वद्धपद्मासन, सर्वांगासन तथा इनके अतिरिक्त मयूरआसन पश्चिमोत्थासन भी हैं ।

प्रश्न १२– पूर्व जन्मों के लिये सद्कर्मों के आधार पर भी फिर तो कुछ ने ब्रह्म प्राप्ति की होगी । स्वामी ! कुछ ऐसे उदाहरण भी दीजिये ?

उत्तर १२– जिज्ञासू ! तुम किसी नदी के उद्गम स्थान को कहाँ तक खोजोगे ? किसी ऋषि, महर्षि के पूर्व जन्मों का कहां तक पता लगाओगे ? हो सकता है कि उसका भूतकाल बिल्कुल ही प्रभाव न डालने वाला हो । तुम्हें उनके द्वारा की गयी सेवाओं को देखना और उनसे संतुष्ट होना चाहिये । उसके अनुभवों का तुम्हारे लिये अधिक मूल्य है, उनसे स्फुरणा लो, अपने जीवन में प्रगति उत्पन्न करो--तथा मार्ग दर्शन का लाभ उठाओ, यदि तुमने उनका प्रारम्भ खोजना प्रारम्भ किया तो फिर मूल विषय से तुम्हारा अन्तर हो जायगा । फिर भी क्योंकि तुमने प्रश्न उठाया है मैं तुम्हें उत्तर दूँगा--व्यास एक मछिआरे की जाति में

पैदा हुए थे, शौनक सुनक जाति के थे, विश्वमित्र क्षत्रिय वंश में जन्में थे, सूत चतुर्थ श्रेणी में पैदा हुए। इनमें सभी श्रेष्ठ और उत्तम कर्मों के करने वाले थे, जिन्होंने जाति के गुणों पर ध्यान दिया, नैतिकता की उच्चता में ही जिनकी दृष्टि थी, जिन्होंने जन्म-मरण से छुटकारे के लिये मार्ग दर्शन किया, भौतिक बन्धनों से मानव को छुड़ाने का उपदेश दिया, संजय, सत्यकाम तथा अन्य भी अनेक नाम इस सूची में लिये जा सकते हैं। स्वयं के द्वारा किये हुए पुरुषार्थ के द्वारा अर्जित विवेक तप आदि यह योग्यतायें हैं जो मानव को उच्च स्थान प्राप्त कराती हैं। अन्तर शुद्धि के बिना चाहे कोई भी व्यक्ति हो, वह किसी भी जाति में उत्पन्न हुआ हो, उच्चता को, उस स्थान को प्राप्त नहीं कर सकता जो मानव देहधारी का लक्ष्य है। यदि तांबे को स्वर्ण में मिला दिया जायेगा तो सोने का मूल्य घट जायेगा। ठीक इसी प्रकार से जैसे कि सोने का मूल्य घट जाता है उसी प्रकार विराट को भी यदि साँसारिकता से सम्बद्ध कर देंगे तो वह निम्नता को प्राप्त हो जायेगा। फिर उसके शुद्ध तत्व की प्राप्ति कराने के लिये क्या करना होगा? तप और व्रत के द्वारा, स्वच्छता और निर्मलता लाने की प्रक्रिया के द्वारा, बुद्धि को उसकी प्रारम्भिक अवस्था, स्थिति में लाना होगा।

प्रश्न १३– इन आसनों की उपलब्धि और लाभ हैं?

उत्तर १३– ये शरीर को सबल बनाने वाले और मस्तिष्क को अधिक समय तक एकाग्र रखने की शक्ति प्रदान करने वाले होते हैं।

प्रश्न १४– स्वामी! मुझे प्राणायाम के विषय में भी बताइये। ये कितने प्रकार का होता है?

उत्तर १४– हाँ प्राणायाम अनेक प्रकार के होते हैं परन्तु वर्तमान युग में उनमें से अनेकों का करना असम्भव है। कुछ ही हैं जो ध्यान करने में सहायक होते हैं। एक है लघु प्राणायाम, अर्थात् श्वांस की क्रिया को साधारण तरीके से नियंत्रित करना।

प्रश्न १५– साधारण प्रकार। वे किस प्रकार से लाभदायक हैं?

उत्तर १५– जिस प्रकार से अग्नि पर धातु को पिघला कर शुद्ध किया जाता है

उसी प्रकार चंचलता का परित्याग करने में समर्थ होता है और मन चंचलता का परित्याग करने में समर्थ होता है। इसके द्वारा कायाशुद्धि और मनःशुद्धि दोनों की प्राप्ति होती है। दो प्रकार के प्राणायाम होते हैं--एक वह जो मंत्र सहित किया जाये तथा दूसरा वह जो बिना मंत्र के किया जाये, बिना मंत्र से किया जाने वाला प्राणायाम शरीर को शुद्ध करेगा लेकिन मंत्र सहित किया जाने वाला प्राणायाम शरीर और मन दोनों को शुद्ध करने वाला होगा।

प्रश्न १६– स्वामी हम इसका किस प्रकार का अभ्यास करें।

उत्तर १६– दो सेकिण्ड का पूरक करो (श्वासं को खींचकर अन्दर भरना) फिर आठ सेकेण्ड का कुम्भक (श्वाँस को अन्दर भरे रखना) तथा उसके पश्चात चार सेकिण्ड को रेचक करो) श्वाँस को बाहर निकाल कर वक्ष को खाली करना)। तीन माह तक स्वस्थता पूर्वक दृढ़ विश्वास से बैठकर, सरल और सबल भाव से, दृढ़ इच्छा शक्ति का सृजन करते हुए यह अभ्यास निरन्तर, बिना किसी दिन भी छोड़े करते जाओ और उसके बाद पूरक, कुम्भक और रेचक के समय को दुगुना कर दो। जब ऐसा करते करते छह माह व्यतीत हो जायेंगे तो तुम्हें अनुभव होगा कि इन्द्रियों की स्वच्छन्द गतिविधि नियंत्रित हो रही है। यदि दृढ़ विश्वास और आस्था के साथ तुमने प्राणायाम का अभ्यास अविराम गति से किया है तो तुम्हारा मन नियंत्रित होगा और यदि ऐसा नहीं है तो फिर वह केवल शारीरिक व्यायाम ही होकर रह जायेगा। यह तुम्हारे शरीर को सबल अवश्य करेगा। शुद्ध आहार, ब्रह्मचर्य, एकान्तवास, और कम बोलना आदि वह नियम हैं जिनका दृढ़ता से पालन आवश्यक है।

प्रश्न १७– स्वामी ! आपने दूसरा प्रत्याहार बताया है। वह कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर १७– तीन प्रकार का : साकार, निरकार और आत्मभव। इन्द्रिय निग्रह और एकाग्रता ही इनका परिणाम है। यदि यह सगुण उपासना के द्वारा किया जाता है तो साकार होगा, निर्गुण उपासना से किया जाता

है तो निराकार होगा, और यदि सत्य ज्ञान रूप अनन्त परमात्मा की अनुभूति के लिये किया जाता है तो आत्मभव होगा।

प्रश्न १८– और धारणा। इसका तात्पर्य क्या है। कितने प्रकार की धारणा होती है?

उत्तर १८– बच्चे। धारणा केवल एक प्रकार की होती है। विवेकी दृढ़तापूर्वक अपने इष्ट की उपस्थिति का भास करता है या ब्रह्मानुभूति को आत्मसात करता है जैसे पृथ्वी पर पर्वत है। यही धारणा है।

प्रश्न १९– फिर ध्यान है। स्वामी यह भी अनेक प्रकार का होता होगा?

उत्तर १९– नहीं नहीं यह भी केवल एक प्रकार का होता है। चाहे यह आकार सहित हो अथवा आकार रहित, यह एक बिन्दु पर ही होगा। अनेकता रहित होना यही ध्यान है।

प्रश्न २०– अन्त में समाधि है। प्रभु इसका क्या अर्थ है?

उत्तर २०– समाधि के अर्थ हैं–मन को समस्त प्रकार के आकर्षणों और वेगों से रहित करके प्रभु पर केन्द्रित करना या निज की आत्मा पर स्थिर करना। यह अवस्था वह है जब मानव अपनी मूल स्वाभाविक प्राकृतिक स्थिति में स्थित होता है। समाधि वह अवस्था है जब मानव प्रत्येक प्रकार के द्वैत भाव से रहित होता है। जब मन द्वैत के भावों से सर्वथा मुक्त होता है, जब वह एक कमरे में जलने वाले दीप की शिखा की तरह होता है, यह निःश्चल, स्थिर और एकाग्र स्थिति होगी।

प्रश्न २१– स्वामी! उस प्रकार मन कैसे व्यवहार करेगा? कृपया कोई सरल उदाहरण देकर समझाइये।

उत्तर २१– जब तुम सुई में धागा डालते हो तब तुम वैसा करने के लिए सन्बद्ध हो जाते हो और धागे के सिरे को सीधा कर लेते हो तथा नुकीला बना लेते हो न, ऐसा है न? इसी प्रकार से–ईश्वर के कृपा क्षेत्र में प्रवेश पाने के समय [illegible] सूक्ष्म से सूक्ष्म है, मन को एकाग्र और स्थिर करना ही होगा, नेत्र और इन्द्रियों को एकाग्र करके ठीक प्रकार से एकाग्र करना है जैसा कि ऊपर उदाहरण दिया गया है।

INDIAN INSTITUT
97926
14/7/2000

Library IIAS, Shimla
H 294.572 Sa 21 P

97926